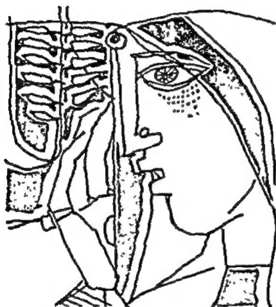
रामकली



रामकली

शैलेश मटियानी





सरस्वती विहार

21, दयानन्द मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

ओ० पी० श्रीवास्तव
सादर

रामकली कमला पहलवान के तबेले की तरफ निकलना ही चाहती थी कि उसे हरगुन पंडित दिखाई दे गया। सिर पर झब्बर-सी चुटिया। माथे पर अल्पना-सी सुन्दरता में रचा हुआ त्रिपुण्ड। गाढ़े की सिलाईदार बण्डी और उसमें काफी नीचे, लगभग घुटनों के ऊपर तक पहुंची हुई गहरे बासंती रंग की जनेऊ। पतली किनारी की सूरजमुखी धोती, एड़ियों तक लहराती हुई और ऐसी उजली, जैसी रायसाहब बेनी प्रसाद वालों के घर में पहनी जाती है।

पंडित ने अचानक ही उसकी ओर देखकर स्वस्ति बांचने की सी मुद्रा में "कहो, रामकली, कैसी हो?" पूछ लिया, तो वह चौंक उठी। अपने चौंक उठने की वजह स्वयं उसे समझ में नहीं आई। सर्दियों की सुबह की तत्काल शुरू होती हुई धूप में हरगुन पंडित का भरावदार चेहरा काफी भव्य लग रहा था। रामकली को अचानक ही याद आया कि पहले जब उसका पिता किसना मथुरा में रहता था। कभी-कभार वह अपनी ताई मौसियों में किसीके साथ द्वारिकाधीशजी के मन्दिर जाया करती थी। तब उसकी उम्र क्या रही होगी? शायद लगभग बारह-तेरह वर्ष, क्योंकि यह छब्बीसवां लगा है और मथुरा से यहां इलाहाबाद आए बारह-तेरह साल से कम क्या हुए होंगे।

बचपन और किशोरावस्था की स्मृतियां हथेली पर की रेखाओं की तरह कभी मिटती नहीं हैं। निरन्तर ज्यादा गहरी होती जाती हैं। रामकली को अच्छी तरह याद आ रहा है कि द्वारिकाधीशजी के मन्दिर में द्वारिकाधीशजी की प्रतिमा के बाद अगर कोई चीज मोहक लगती थी, तो वह थी वहां के पुरोहितों की दिव्य वेश-भूषा। वैसी राजसी वेश-भूषा कहीं बाहर देखने नहीं मिलती थी। आंखों को पुरोहितों का वेश और सुदीर्घ गोरे शरीर [illegible]

बांध-से लेते थे। उन्हीं में एक कम उम्र के महाराज भी थे। अन्दाज़ से पन्द्रह-सोलह वर्ष उनकी उम्र रही होगी।

इस वक्त हरगुन पंडित को देखकर, एकाएक उस छोटे महाराज की याद क्यों हो आई होगी रामकली को? अपने भीतर की स्मृतियों में ही रहते हुए, रामकली ने धोती का पल्ला सिर पर थोड़ा-सा आगे कर लिया, "पायलागों, हरगुन पंडित! लगता है, गंगाजी से लौटे हो?"

"हां···आं···यह माघ का महीना है न, रामी! इस महीने गंगाजी नहाने का बड़ा पुण्य होता है। लो, थोड़ा आचमन कर लो। ओम् हर-हर-हर—जै गंगा मैया!"

रामकली को स्वयं यह ध्यान नहीं था कि अपनी बात कहने से लेकर हरगुन पंडित की बात सुनने तक में वह लगातार मुस्कराती रही है। हरगुन पंडित ने कहा, "तुम तो, रामकली, देवी की प्रतिमा की तरह सदैव प्रसन्न ही दिखाई देती हो! बसंतवा बड़ा भागवान निकला!"

हरगुन पंडित समर्पित मुद्राओं वाला आदमी है। अपने आगे-पीछे कोई है नहीं, बस्ती वालों से ही घरापा है। सबसे आत्मीयता बनाए रखता है और विनोदी भी है। रामकली से भी मज़ाक करता है अकसर—खासतौर पर बसंता और कमला पहलवान को लेकर। रामकली का भी मन हुआ कि मज़ाक करे। कहे कि 'क्यों, कहो तो बसंता को छोड़कर तुम्हारे बैठ जाऊं?'···लेकिन बोली सिर्फ इतना ही, "जैसा त्रिपुण्ड माथे पर तुम रचाते हो, हरगुन पंडित, हमें तो तुमसे ज़्यादा भागवान कोई दिखता नहीं!"

"सो तो ठीक है···सो तो ठीक है। जै गंगा मैया!" कहते हुए हरगुन पंडित आगे बढ़ गया।

यह बड़ी विचित्र बात है कि अकसर गप्पें लड़ाने की तैयारी में दिखता हुआ हरगुन पंडित अचानक ही 'जै गंगा मैया की' या 'जै रामजी की' बोलकर धीमे से खिसक जाता है।

अब तक रामकली कमला पहलवान के तबेले तक पहुंच गई होती, लेकिन वह खुद नहीं समझ पाई कि इस तरह की सावधानी उसने क्यों अनुभव की। हरगुन पंडित आगे को बढ़ गया, तो रामकली उसे देखती ही रही। लम्बे डग भरते चलते में उजली धोती में से उजागर होती हुई हरगुन पंडित की पिण्डलियों को देखते रहना, न जाने उसे क्यों अच्छा लगता रहा।

हरगुन पंडित आंखों से ओझल हुआ, तो रामकली का सारा ध्यान अपने प्रति केन्द्रित हो गया। वासी धोती में ही वह उठ खड़ी हुई थी और दूध लेने की जल्दी में लोटा लिए चल पड़ी थी। प्राय: वह जल्दी उठ जाती है, लेकिन आज विलम्ब हो गया था। स्टेशन की कोई सवारी पहुंचाकर, फिर वहां से सवारी पकड़ता-छोड़ता वसंतलाल लगभग डेढ़ बजे रात वापस लौटा था। उसको खिलाते और छोटी बच्ची को चुप कराकर सुलाते-सुलाते और भी देर हो गई थी।

रामकली वापस भीतर पहुंची, तो देखा, बच्चे तो अभी भी सोये हैं, लेकिन वसंतलाल जाग चुका है और खटिया पर पड़ा-पड़ा ही बीड़ी पी रहा है। अभी-अभी बाहर देखे हुए हरगुन पंडित के सुन्दर स्वरूप की तुलना में खटिया पर पड़े बीड़ी पीते वसंतलाल को देखना उसे प्रियकर नहीं लगा। बढ़ी हुई दाढ़ी में वसंतलाल का चेचक का खाया सांवला चेहरा उसे निहायत बद-सूरत लगा और वह तुरन्त छोटी कुठरिया की ओर बढ़ गई।

वसंतलाल ने उसे देख लिया था। वहीं से बोला, "रामो, दूध ले आई हो क्या?"

अजब है कि यह आदमी खुद जितना खुरदरा और बदशक्ल है, आवाज उतनी ही आत्मीय और संतुलित। लगता है, बोलने वाला कोई दूसरा ही वसंतलाल है।

रामकली जिस तरह से बोली कि "अभी नहीं लाई, जाती हूं," वसंतलाल ने अनुमान लगा लिया कि वह धोती का पल्ला मुंह में दाबे होगी, शायद ब्लाउज-पेटीकोट बदल रही हो। वह खटिया पर से उठता हुआ बोला, "अच्छा, तो दूध मैं लेता आऊं…।"

वह खटिया पर से ठीक से उतर भी नहीं पाया था कि रामकली बाहर निकल आई। वह सिर्फ पेटीकोट और ब्लाउज पहने थी और धोती ठीक कर रही थी। बोली, "तुम रहने दो। कहीं गप्प लड़ाते बैठ जाओगे…। और कमला पहलवान पैसों के लिए भी तो तगादे करेगा? तुमने पिछले महीने देने को कहा था। पिछले ही बकाया अट्ठाईस-उन्तीस रुपये बता रहा था…। और तुम सुबह-सुबह उठते हो, तो जरा शऊर से कपड़ा डालकर उठा करो! बच्चे भी जागते होंगे!"

वसंतलाल का उत्साह बैठ चुका था। वह सिगड़ी जलाने की तैयारी में

दिखने की कोशिश करता हुआ कमरे से बाहर निकल आया। रामकली ने ठीक से धोती पहनी और फिर बालों पर कंघी की। बड़े चाव से माथे पर चटख लाल बिंदिया लगा लेने के बाद, काजल भी लगाया और तब कहीं यह कहती हुई बाहर निकल गई, "तुम चा की केतली चढ़ा देना। तीन गिलास पानी रखना, छुटकी को भी दूध-चा देंगे। उधर जस्ते के भगोने में रात की सब्जी बची होगी, बड़का उठे, तो गरम कर देना। रोटी मांगेगा।"

कमला पहलवान का तबेला ज्यादा फासले पर नहीं है, लेकिन रामकली को आज लगता रहा, जैसे किसी यात्रा पर हो। अचानक ही उसे इस बात का अहसास हुआ कि अगर हरगुन पंडित की तरह नहा-धोकर निकलती, तो और अच्छा लगता। मौसम तो इन दिनों काफी ठंडा है, लेकिन जब कभी वह सुबह-सुबह नहा लेती है, नहाने के पहले आलस जरूर लगता है, लेकिन बाद में शरीर में एक हलका खुलापन-सा महसूस होता है। उसने अकसर इस बात पर ध्यान दिया है कि सुबह तड़के ही नहाती है, तो स्तनों में मद्धिम-मद्धिम-सी ऊष्मा भरी हुई लगती है और नहाने के तुरन्त बाद छुटकी को दूध पिलाना अच्छा लगता है।

जब छोटी बच्ची होने को थी, तभी से जिस्म बहुत भर गया था। बड़े बच्चे की बार रामकली का स्वास्थ्य इतना अच्छा नहीं था। उसको तो महीने-भर बाद ही बाहर के दूध पर रखना पड़ा था, जबकि छोटी जब तक सात-आठ महीने की नहीं हो गई, कभी भूले-भटके ही बाहर का दूध देना पड़ा। अब तो साल-भर की होने को आई, लेकिन अभी भी अकसर अघाकर छोड़ देती है—खास तौर पर सुबह-सुबह।

पानी की सतह पर तैरते कलश की तरह अपने-आपमें डूबी-सी चलती रामकली पहलवान के तबेले के बाहर पहुंची, तो देखा, नित्य की ही तरह कमला पहलवान अपने अगल-बगल दूध की बाल्टियां फैलाए बैठा है।

इस बात को रामकली ने भी लक्ष्य किया कि बोलने से पहले कुछ क्षणों तक वह उसे एकटक घूरता ही रह गया है।

"कहो, रामकली!" कहने के बाद भी वह एकटक देखता ही रहा तो रामो ने ध्यान दिया कि बाकी के लोग भी उसीकी ओर देख रहे हैं।

हालांकि सुबह खुले काफी देर हो गई थी और दूध लेने वाले इक्के-दुक्के

ही रह गए थे, लेकिन फिर भी उसे लगा, जैसे वह अच्छी-खासी भीड़ के बीच खड़ी है। सिर पर का पल्लू थोड़ा आगे और छाती पर के पल्लू को थोड़ा फैलाते हुए रामकली ने लोटा आगे बढ़ा दिया, "पाव-भर दूध…"

कमला पहलवान ने उसे थोड़ा-सा रुक जाने का सकेत किया और अपेक्षाकृत तेज़ी से दूध लेने वालों को निबटाने लगा। रामकली लोगों की उपस्थिति के बीच अपने-आपको टोहती इस अहसास से गुज़रती रही कि उन्हें जल्दी निबटा डालने की एक उतावली-सी कमला पहलवान के पूरे अस्तित्व में भर गई है और दूध नापकर देने में वह किंचित् उदारता बरत रहा है।

ग्राहक जा चुके, तो कमला पहलवान ने पास खड़े नौकर को भी चूनी-भूसी संभालने के बहाने कोठरी की तरफ भेज दिया और अब उसके चेहरे और आंखों में इतमीनान झलकने लगा। मुह में भरी सुर्ती को जीभ से चलाने और खटिया के एक ओर थूकने के बाद, उसने धीमे-से रामकली के हाथ से लोटा ले लिया। रामकली से यह छिपा नहीं रहा कि लोटा लेने के बहाने कमला पहलवान ने उसकी अंगुलियों को उनकी पूरी लम्बाई में स्पर्श करने की कोशिश की है।

अनायास ही रामकली के चेहरे पर एक ऊष्मा भर आई और यह साफ-साफ वह खुद ही नहीं समझ पाई कि ऐसा नारी-सुलभ संकोच के कारण हुआ है, कमला पहलवान के लोटा लेने के ढंग के प्रति एतराज की खीज में हुआ है, या कि एक निहायत अमूर्त्त किस्म की ही सही, उसके आकर्षक औरतपन के प्रति कमला पहलवान के उतावलेपन की रोमांचकता की भूमिका भी इसमें है ?

लोटा देने को, शायद, वह भी थोड़ा-सा झुकी होगी। उसने अपनी द्विविधा में से उबरने की आवश्यकता अनुभव की और आवाज को काफी संतुलित करते हुए कहा, "रतन के बाबू ने कहा है, पैसा जल्दी ही दे देंगे। अब माघ मेले की सवारियां उठाने लगे हैं। कह रहे थे, बड़ी रकम हो गई है, दो-चार करके क्या दें…!"

"तू भी कहां सुबह-सुबह लेना-देना लेके बैठ गई, रामकली ! पचीस-तीस की रकम भी ससुरी कोई जिन्दा रकम है ? इतने का तो मेरी एक ही भैंस एक वक्त के पिन्हाने में छोड़ती है। तू आज आकर खड़ी हुई, तो मैं तेरे हाथ का लोटा कहां देख पाया ? तू तो आज ऐसे आई है, जैसे कोई देवी दर्शन देने आई

हो ! खड़ी क्यों है, तनिक बैठ क्यों नहीं जाती ?"

कमला पहलवान ने हथेली से खटिया का एक कोना थपथपाते हुए कहा, तो रामकली नहीं समझ पाई कि आखिर मन में न बैठने की सावधानी के बावजूद वह कैसे धीमे-से चारपाई पर बैठ गई। बैठते ही उसे ध्यान आया कि यह बातें लड़ाने का वक्त नहीं है। और, आखिर यों एक ही चारपाई के दूसरे कोने पर बैठकर वह कमला पहलवान से बातें भी क्या करेगी ! उसने निहायत तेज़ी से एक झलक कमला पहलवान को देखा और उसे लगा कि इस एक झलक में ही उसने कमला पहलवान को ऊपर उड़ती हुई चील की तरह देख लिया है।

उम्र में कमला पहलवान वसंतलाल से ज्यादा नीचे नहीं लगता। आंखों के आस-पास और माथे पर की मांसपेशियां काफी सख्त हैं, लेकिन बाकी के चेहरे पर कद्दावर जिस्म की चमक भरी रहती है। आंखें आनुपातिक रूप से छोटी और किंचित् भूरापन लिए हुए, मूंछें घनी और तराशदार। सफेद बाल दाढ़ी-मूंछ में गिनती के ही होंगे, हालांकि कनपटियों के पास अपेक्षाकृत ज्यादा। नाक के सिरे पर, बायें पार्श्व में थोड़ा बड़ा-सा मस्सा। हाथ-पांवों की बनावट में कुश्तीबाज़ों की सी कसावट। होंठ कुछ पतले ही, लेकिन थोड़े फैले हुए। बाईं जांघ पर, घुटने के पास वाले हिस्से में, किसी गहरे-चौड़े घाव का निशान।

निश्चित है कि कमला पहलवान के जिस्म का यह पूरा खाका सिर्फ इस एक क्षण में रामकली ने नहीं देखा होगा, खास तौर पर इस वक्त, जबकि कमला पहलवान की लुंगी घुटनों पर से काफी नीचे तक गिरी हुई है—लगभग पांव के पंजों तक। लेकिन पिछले लगभग तीन महीनों का गाहे-बगाहे देखा हुआ इन कुछ क्षणों में एक जगह जुड़ गया है और अब इस वक्त रामकली को साफ-साफ इस बात का अहसास हुआ कि पिछले कुछ अरसे में कमला पहलवान के रवैये में धीरे-धीरे बदलाव आता गया है। उसे याद है, यही कमला पहलवान सिर्फ दो रुपया बकाया रहने पर लगभग डांट रहा था, इस बात को अभी दो महीने भी पूरे नहीं बीते होंगे।

सोचते-सोचते, एक तरह की कड़वाहट-सी रामकली को अनुभव हुई और वह उठ खड़ी हुई, "घर पर लोग चा के इन्तज़ार में होंगे, इस वक्त हम चलें, कमला पहलवान !"

वह इस आशंका में थी कि कहीं कमला पहलवान अचानक ही हाथ पकड़-

कर यों न कहने लगे कि 'तनिक बैठो तो सही, रामकली !' लेकिन कमला पहलवान ने तुरन्त लोटे में दूध डालना शुरू कर दिया और भरा लोटा देखते ही रामकली कुछ कहने को हुई थी कि कमला पहलवान बोल उठा, "अब गिराकों के आने का वक्त जाता रहा। तू लेती जा, बाकी हम लोग पी जाएंगे, या खीर डाल देंगे। मुफ्त में न लेना चाहेगी तू, तो हिसाब में डाल दूंगा "और कमला पहलवान के हंसे-बोले का बुरा न मानना ! इस जिन्दगी में आदमी के हंस-बोल लेने के अलावा और कोई सच्चा सुख है नहीं, रामकली ! आदमी के भीतर की ठंड बातचीत से ही कटती है। आज तो तू सचमुच ऐसे वेश में चली आई कि सन्तोषी माता का रूप याद आ गया ! तू कभी सन्तोषी माता का व्रत रहती है कि नहीं ?"

रामकली ने अनुभव किया, लोटे में भरे दूध को लेकर बहस करने की गुंजाइश कमला पहलवान ने छोड़ी ही नहीं है। उसको लगा, यह मुस्करा देने को बाध्य हो गई है। लोटा सभालते हुए बोली, "हम जैसी गई-बीती जनानियों में सन्तोषी मैया का रूप न ढूंढा करो, कमला पहलवान ! मैया भी नाराज़ होंगी, तुम भी धोखा खाओगे !"

जब तक मैं कमला पहलवान का मुह खुलने को हुआ, रामकली धोती का पल्ला ठीक से माथे पर चढाते हुए घर की ओर मुड़ गई और काफी फासला उसने तेज़ कदमो से चलकर पार किया।

बस्ती, इस वक्त, लगभग पूरी धूप के बीच थी और अपनी सम्पूर्ण निर्द्वन्द्वता में घूमते हुए कुत्ते ठंड के पूरी तरह से दूर हो चुकने की प्रतीति करा रहे थे। देशी शराब के गोदाम की ओर से बोतलें लादे आते हुए रिक्शा-ठेले को देखकर रामकली को बसंतलाल की याद हो आई। उसे यह भी याद आया कि जिस रात बसंतलाल पी लेता है, खाना बहुत ज्यादा खा जाता है। सामान्यतया वह रामकली के खाने-पहनने की काफी चिन्ता करता है, लेकिन नशे में यह भी भूल जाता है कि रामकली के लिए रोटी बची भी, या नहीं।

यह सचमुच कितना विचित्र है कि बसंतलाल के साथ की गृहस्थी के अभाव रामकली को अब धीरे-धीरे ज्यादा चुभने लगे हैं, जबकि शादी हुए दस वर्ष हो चुके। अब दो बच्चों की मां बन चुकने के बाद ही यह भी ज्यादा होने लगा है कि वह बसंतलाल को अपनी उम्र और अपने जिस्म के साथ तौलकर देखने लगी है।

हो ! खड़ी क्यों है, तनिक बैठ क्यों नहीं जाती ?"

कमला पहलवान ने हथेली से खटिया का एक कोना थपथपाते हुए कहा, तो रामकली नहीं समझ पाई कि आखिर मन में न बैठने की सावधानी के बावजूद वह कैसे धीमे-से चारपाई पर बैठ गई। बैठते ही उसे ध्यान आया कि यह बातें लड़ाने का वक्त नहीं है। और, आखिर यों एक ही चारपाई के दूसरे कोने पर बैठकर वह कमला पहलवान से बातें भी क्या करेगी ! उसने निहायत तेज़ी से एक झलक कमला पहलवान को देखा और उसे लगा कि इस एक झलक में ही उसने कमला पहलवान को ऊपर उड़ती हुई चील की तरह देख लिया है।

उम्र में कमला पहलवान बसंतलाल से ज़्यादा नीचे नहीं लगता। आंखों के आस-पास और माथे पर की मांसपेशियां काफी सख्त हैं, लेकिन बाकी के चेहरे पर कद्दावर जिस्म की चमक भरी रहती है। आंखें आनुपातिक रूप से छोटी और किंचित् भूरापन लिए हुए, मूंछें घनी और तराशदार। सफेद बाल दाढ़ी-मूंछ में गिनती के ही होंगे, हालांकि कनपटियों के पास अपेक्षाकृत ज़्यादा। नाक के सिरे पर, बायें पार्श्व में थोड़ा बड़ा-सा मस्सा। हाथ-पांवों की बनावट में कुश्तीबाज़ों की सी कसावट। होंठ कुछ पतले ही, लेकिन थोड़े फैले हुए। बाईं जांघ पर, घुटने के पास वाले हिस्से में, किसी गहरे-चौड़े घाव का निशान।

निश्चित है कि कमला पहलवान के जिस्म का यह पूरा खाका सिर्फ इस एक क्षण में रामकली ने नहीं देखा होगा, खास तौर पर इस वक्त, जबकि कमला पहलवान की लुंगी घुटनों पर से काफी नीचे तक गिरी हुई है—लगभग पांव के पंजों तक। लेकिन पिछले लगभग तीन महीनों का गाहे-बगाहे देखा हुआ इन कुछ क्षणों में एक जगह जुड़ गया है और अब इस वक्त रामकली को साफ-साफ इस बात का अहसास हुआ कि पिछले कुछ अरसे में कमला पहलवान के रवैये में धीरे-धीरे बदलाव आता गया है। उसे याद है, यही कमला पहलवान सिर्फ दो रुपया बकाया रहने पर लगभग डांट रहा था, इस बात को अभी दो महीने भी पूरे नहीं बीते होंगे।

सोचते-सोचते, एक तरह की कड़वाहट-सी रामकली को अनुभव हुई और वह उठ खड़ी हुई, "घर पर लोग चा के इन्तजार में होंगे, इस वक्त हम चलें, कमला पहलवान !"

वह इस आशंका में थी कि कहीं कमला पहलवान अचानक ही हाथ पकड़-

कर यों न कहने लगे कि 'तनिक बैठो तो सही, रामकली !' लेकिन कमला पहलवान ने तुरन्त लोटे में दूध डालना शुरू कर दिया और भरा लोटा देखते ही रामकली कुछ कहने को हुई थी कि कमला पहलवान बोल उठा, "अब गिराकों के आने का वक्त आता रहा। तू लेती जा, बाकी हम लोग पी जाएंगे, या खीर डाल देंगे। मुफ्त में न लेना चाहेगी तू, तो हिसाब में डाल दूंगा" और कमला पहलवान के हंसे-बोले का बुरा न मानना ! इस जिन्दगी में आदमी के हंस-बोल लेने के अलावा और कोई सच्चा सुख है नहीं, रामकली ! आदमी के भीतर की ठंड बातचीत से ही कटती है। आज तो तू सचमुच ऐसे वेश में चली आई कि सन्तोषी माता का रूप याद आ गया ! तू कभी सन्तोषी माता का व्रत रहती है कि नहीं ?"

रामकली ने अनुभव किया, लोटे में भरे दूध को लेकर वहम करने की गुंजाइश कमला पहलवान ने छोड़ी ही नहीं है। उसको लगा, वह मुस्करा देने को बाध्य हो गई है। लोटा सम्भालते हुए बोली, "हम जैसी गई-बीती जनानियों में सन्तोषी मैया का रूप न ढूंढा करो, कमला पहलवान ! मैया भी नाराज होंगी, तुम भी धोखा खाओगे !"

जब तक में कमला पहलवान का मुंह खुलने को हुआ, रामकली धोती का पल्ला ठीक से माथे पर चढ़ाते हुए घर की ओर मुड़ गई और काफी फासला उसने तेज कदमों से चलकर पार किया।

बस्ती, इस वक्त, लगभग पूरी धूप के बीच थी और अपनी सम्पूर्ण निर्द्वन्द्वता में घूमते हुए कुत्ते ठंड के पूरी तरह से दूर हो चुकने की प्रतीति करा रहे थे। देशी शराब के गोदाम की ओर से बोतलें लादे आते हुए रिक्शा-ठेले को देखकर रामकली को बसंतलाल की याद हो आई। उसे यह भी याद आया कि जिस रात बसंतलाल पी लेता है, खाना बहुत ज्यादा खा जाता है। सामान्यतया वह रामकली के खाने-पहनने की काफी चिन्ता करता है, लेकिन नशे में यह भी भूल जाता है कि रामकली के लिए रोटी बची भी, या नहीं।

यह सचमुच कितना विचित्र है कि बसंतलाल के साथ की गृहस्थी के अभाव रामकली को अब धीरे-धीरे ज्यादा चुभने लगे हैं, जबकि शादी हुए दस वर्ष हो चुके। अब दो बच्चों की मां बन चुकने के बाद ही यह भी ज्यादा होने लगा है कि वह बसंतलाल को अपनी उम्र और अपने जिस्म के साथ तौलकर देखने लगी है।

रामकली घर के बाहर पहुंच चुकी थी कि उसे अचानक ही फिर हरगुन पंडित की स्मृति हो आई। गंगा नहाकर लौटते हुए इतने समीप से हरगुन पंडित को आज उसने पहली बार देखा था। उसे याद आया कि जब हरगुन पंडित ने उसपर गंगाजल डाला था, तब उसकी हथेली पर से चन्दन की जैसी सुगन्ध फूटती लग रही थी। हरगुन पंडित के उजलेपन को देखकर ही तो उसे अपने मैले कपड़ों में होने का अहसास हुआ था। कमला पहलवान ने, शायद, इतने स्वच्छ कपड़ों में पहली बार देखा होगा, क्योंकि प्रायः दूध लेने वह बासी कपड़ों में ही जाती है। कमला पहलवान के 'सन्तोषी माता का सा' वेश बनाकर आने वाले प्रसंग को लेकर, अब इस वक्त रामकली को एक आत्म-तृप्ति की सी अनुभूति हुई और उसका मन हुआ कि हरगुन पंडित फिर कभी इसी तरह गंगा नहाकर सुबह-सुबह दिखाई दिया, तो वह उससे कहने की कोशिश करेगी कि 'हरगुन पंडित, जब तुम गंगा नहाकर लौटते हो, तो तुममें द्वारिकाधीशजी के मन्दिर के महाराजों का सा रूप उतर आता है!'

एक धीमी मुस्कराहट रामकली के पूरे शरीर में भर गई और भीतर पहुंचते ही रामकली ने दूध के लोटे को ऊपर के आले में रख दिया और सिगड़ी के पास बैठे बीड़ी पीते वसंतलाल से बोली, "तुम उठो, बच्चों को जगा लो। अभी तक सोये ही लगते हैं, हरामी! चा मैं बनाती हूं।"

शाम के लगभग पांच बजे रामकली छुटकी को साथ लिए सब्जी बाजार की ओर निकली। सुबह का गया वसंतलाल अभी वापस लौटा नहीं था। आस-पास की कुछ औरतों से बतियाती रामकली निगम चौराहे पर पहुंची, तो सामने से हरगुन पंडित आता दिखाई दे गया।

समीप आने पर देखा कि बण्डी पर रामनामी की तरह की चादर डाले हुए है और हाथ में कुछ अन्य चीजों के साथ अगरबत्ती का पैकेट भी है। रामकली के गौर से देखने में, शायद, हरगुन पंडित को जिज्ञासा का आभास मिला। बोला, "मातृपट ओढ़े हुए हूं, रामकली! जैसे रामनामी होती है, उसी तरह यह सन्तोषी माता का पट है। इसमें 'श्रीराम, श्रीराम' की जगह 'जै सन्तोषी माता, जै सन्तोषी माता' छपा है।"

अपनी बात समाप्त करते हुए हरगुन पंडित ने अपने सीने पर से चादर का पल्लू सामने की ओर बढ़ाया, तो रामकली को एकाएक फिर वसंतलाल

की याद आई। अब बसंतलाल ने कहना छोड़ दिया है, पहले छाती पर के सफेद बाल निकाल देने को कहता था। तब सिर्फ रामरतन ही हुआ था। रामकली की उम्र मुश्किल से बीस-इक्कीस रही होगी और रामकली को लगता था, उम्र का यह फासला बहुत बड़ा है और उसे अपने चाचा-ताऊ के साथ बैठे हुए होने की सी प्रतीति होती थी। और होती थी, कहीं न जा सकने वाली किस्म की ऊब और खीज।

अचानक ही रामकली को सुबह-सुबह कमला पहलवान की कही हुई बात याद आई और वह हरगुन पंडित की ओर व्यंग्य से देखती हुई बोली, "रहने दो, हरगुन पंडित ! बहुत अंचरा फैलाय के न दिखाओ ! तुम शायद हमको अनपढ़ समझते हो ! तुम्हारी तरह संसकीरत की पोथी-पतरा तो नहीं, लेकिन इतना हम भी बांच लेते हैं···! ये अचानक तुमको सन्तोषी माता की भगती काहे सूझ गई ? तुम भी, हरगुन पंडित, अब जिस देवी मैया की मानता का बस्ती में जोर देखते हो, उसीकी आरती उतारने लगते हो ! पहले तुम अलोपिन मैया के भगत बना करते थे ?"

हरगुन पंडित रामकली की तुर्श आवाज से किंचित् हतप्रभ-सा हो गया। अपने-आपको संभालते हुए बोला, "रामकली, हमारे खातिर तो जैसी अलोपिन; तैसी संतोषी मैया ! बाकी तुम जानती हो कि हमारे पास कोई नौकरी-चाकरी तो है नहीं ना···बस, मैया के ही नाम पर गुजर चलती है···! अच्छा, सुनो, कल पूनों का नहान पड़ रहा है, संगम नहीं जाओगी ?"

"अभी सब्जी खरीदे खातिर निकली हूं, तो रास्ते में कई लोगों ने कहा कि 'चलोगी, रामकली ?' हमारे तो बच्चे ही भी छोटे हैं। अब बस, मौका लगा, तो अमावस का नहान कर लेंगे !"

"अरी, जाके घर में बैठा काजी, उसको कौन करावे राजी ! तुम्हारे तो घर में सवारी खड़ी रहती है ! बसंता से कहो, सुबह-सुबह रिक्शे से छोड़ दे। बांध तक रिक्शा जाता है, वहां से फलांग-दो-फर्लांग गंगा मैया रह जाती हैं। हम तो यहीं बस्ती से रोज सुबह पांवों पर चले जाते हैं।"

"अकसर तो तुम सिर्फ दुरोपदी घाट तक जाते हो, हरगुन पंडित !"

"हां, सो तो है, लेकिन मुख्य-मुख्य नहान हमेशा संगम पर ही करते हैं। कल तो हम मुंह-अंधेरे ही चले जाएंगे।"

"मुंह-अंधेरे तो बहुत ही ठंड रहती होगी ? पीपलवाली मौसी तो बता रही थीं कि अबके मैया दूर, झूंसी से जा लगी हैं, पावों बहुत चलना

पड़ता है।"

"पीपलवाली मौसी की वात तुम भी ले आईं! कहां वह वुढ़िया और कहां तुम…! तुम जैसी तो चार फेरा लगा लें, तो भी न थकें! अच्छा, जैरामजी की, चलें!"

"सुनो, हरगुन पंडित, मुंह-अंधेरे ही अगर चलना हो, तो क्या हम भी नहा आवें? वच्चे वड़ी देर से उठते हैं सर्दियों में। तव तक में तो हम लौट आवेंगी?"

हरगुन पंडित ने कल्पना भी नहीं की थी कि रामकली इतने आकस्मिक रूप से नहाने को तैयार हो जाएगी। वह थोड़ा अचकचा-सा गया और यह अनुमान लगाना कठिन हो गया कि मुंह-अंधेरे रामकली नहाने जान-पहचान की औरतों के साथ जाएगी, या हरगुन पंडित के साथ जाना चाहती है? जिस तरह से रामकली कह रही थी, लगता था, जैसे हरगुन पंडित से ही कह रही हो कि हमें भी साथ लेते चलना।

"हां, हां, लौट क्यों नहीं आवोगी! पास-पड़ोस की दूसरी औरतों को भी घर के काम रहेंगे। सभी जल्दी लौटेंगी।"

"वस, जान-पहचान वालियों के साथ चली, तो संझा से पहले घर क्या लौटेंगी! मार मटरगश्ती करती चलती हैं! कहीं भी जाना हो, जी उवाय जाता है! वातें भी वही, तैंने क्या खाया, मैंने क्या हगा! माफ करना, हरगुन पंडित, वदजवानी हो जाए तो…तुम क्या अपने साथ नहीं ले चलोगे? पुजारी के साथ के जाने का कुछ ज़्यादा ही पुन्न होगा ना!"

रामकली अपनी वात पूरी करके इस तरह हंस पड़ी कि हरगुन पंडित हड़वड़ा गया। वड़ी कठिनाई से उसने कहा, "तो तुम क्या हमारे साथ चलोगी, रामकली?"

रामकली ने रामरतन के अंगूठे को ठीक से अपने दायें हाथ में पकड़ा, वायें हाथ से माथे पर उतर आए वालों को ठीक किया और इतना कहने के साथ ही आगे निकल गई, "सुवह मुंह-अंधेरे ही यहीं, निगम चौराहे पर मिलना। हमारी कोठरिया के पास से 'जै संतोषी मैया की, जै संतोषी मैया की' पुकारते निकल जाना, वस!"

हरगुन पंडित को अपने भौंचकपने से उवरने में दलदल में फंसे पांव को वाहर खींचने की सी अनुभूति हुई।

रामकली आगे वढ़ चुकी थी, लेकिन हरगुन पंडित को अपनी पीठ के

पीछे छोड़ते हुए वह जिस तरह खिलखिलाई थी, वह हरगुन पंडित के सारे अस्तित्व में अभी तक बज रहा था।

स्थिति के नाजुकपन को रामकली समझती है। देखने को कहीं कुछ आपत्तिजनक नहीं है और न वसंतलाल ने ही कोई आपत्ति की थी। उसने सिर्फ इतना जरूर कहा था कि चाहें तो सभी नहाने को जा सकते हैं। भूरे को बुला लिया जाएगा। बांध पर से किले की ओर पैदल और वहां से नाव पर। जब रामकली नहाएगी, वसंतलाल बच्चों को देखेगा, नाव पर, वसंतलाल के नहाने पर रामकली। नाव पर दोनों बच्चों को बहुत आनन्द आएगा।

रामकली भी समझती है। जानती है दोनों बच्चे बहुत खुश होंगे। लेकिन अपने लिए जिस तरह के आनन्द की कल्पना उसने की है,वह इन सबके साथ सम्भव नहीं। वास्तविकता से अभी सबका नहीं पड़ा, लेकिन कल्पना में ममफोर्डगंज की इस छोटी-सी बस्ती से संगम के बीच तक के सारे फैलाव को रामकली पार कर भी चुकी। हरगुन पंडित के साथ मुंह-अंधेरे का चलना, जिन्दगी में पहली बार अपने निजीपन में चलना होगा। वसंतलाल का उम्र में बड़ा और रामकली के स्वभाव की तुलना में गृहस्थी का अभावग्रस्त होना रामकली के लिए आकस्मिक रूप से उजागर नहीं हुआ है। लगभग दस वर्षों की गृहस्थी हो चुकी और अब कहीं उजागर हुआ है रामकली के भीतर का स्त्रीत्व कि जरा देखे। देखे कि मुंह-अंधेरे की यात्रा के बाद वसंतलाल की घरवाली की जगह सिर्फ एक औरत के रूप में नहाती रामकली को देखकर हरगुन पंडित पर क्या बीतती है!

अपने-आपको अपने सम्पूर्ण औरतपन में उजागर देख सकने की ललक रामकली में दुलहन की तरह नहीं आई है। रामरतन गर्भ में था, तब से वह कानों से सुनती और आंखों से देखती आई है वसंतलाल और अपने बीच के फर्क को। सिर्फ उम्र के अन्तराल को ही नहीं, बाहरी असमानताओं को भी। जान-पहचान के दायरे में सार्वजनिक रूप से भी चर्चा यही रही है कि कहां बसंता, कहां रामकली!

हमजोलियों और हंसी-ठट्ठा करने वालों ने ही नहीं, पीपलवाली मौसी, फूलो ताई और चक्की वाली अन्नो मौसी जैसी बड़ी-बूढ़ियों का कहना भी यही रहा है कि रामकली तो कमल का फूल है। अन्नो मौसी तो काफी पैसे वाली हैं। खुद की चक्की और खुद का तिमंजिला मकान है। एक दिन नहाने के तुरन्त

बाद वह गेहूं पिसाने गई थी, हालांकि पुरानी धोती में ही। अन्नो मौसी गल्ले पर बैठी थीं। शायद कुछ देर देखती रही होंगी। पिसाई के पैसे देने रामकली गई। और धोती के पल्लू वाले कोने में से बंधी रेजगारी निकालने में पल्लू सीने पर से पूरी तरह हट गया होगा। अन्नो मौसी तो वैसे भी औरत जात हैं, रामकली आखिर सावधानी भी क्यों बरतती ? बाद में, कई दिन बीत चुकने पर, फूलो ताई के मुंह से होती हुई यह बात भूरे की भाभी के होंठों से फूटी थी कि 'चक्की वाली सहुआइन कहती थीं कि रामकली की तो यूनिवर-सिटी वालियों की सी बनावट है !'

तब रामकली ने इस बात को सिर्फ इस रूप में लिया था कि 'हाय, अन्नो मौसी जैसी बुजुर्ग औरतें भी कैसी-कैसी बात कर लेती हैं ! आग लगे उनकी ज़बान को !'

अब इतने इतमीनान में और इस तरह के अहसास में तो रामकली नितांत स्वाभाविक रूप से ही रहती चली आ रही है कि अच्छा रहन-सहन और पहनावा होता, तो बड़े घर की बहुओं में और उसमें फर्क करना कठिन हो जाता।

यह अपने अपवाद रूप से सुन्दर और विरल होने का आत्म-सम्मोहन ही है, जिसे आखिर-आखिर यह परिणति मिली है कि हरगुन पंडित की प्रतीक्षा रामकली के अस्तित्व में भर गई है। रात आधी से ज्यादा जा चुकी होगी। रामकली को नींद इस तरह टूट-टूटकर आ रही है कि निरन्तर जागते रहने की सी प्रतीति होती है। ऐसा पहले कभी हुआ हो, रामकली की स्मृति में नहीं है। होने को वह दो बच्चों की मां बन चुकी, लेकिन अपनी स्मृति पर जोर देने पर भी यह याद नहीं आ सकता कि पहले कभी उसने बसंतलाल का इस तरह इन्तजार किया हो, जैसे कि हरगुन पंडित के साथ मुंह-अंधेरे की यात्रा का।

यह भी सचमुच विचित्र है कि हरगुन पंडित के साथ गंगा-नहान पर नहीं, एक लम्बी यात्रा में जाने की सी तैयारी अनुभव हो रही है। उसका कहने को मन हो रहा है कि 'हरगुन पंडित, इतना अचानक और इस तरह का जो फैसला हमने ले लिया कि मुंह-अंधेरे और वह भी सर्दियों के मौसम में तुम्हारे साथ नहाने चलेंगी, क्यों ले लिया ? तुम शायद जानते नहीं होगे कि औरत को जब खुद को देखना होता है, अपनी आंखों का देखना उसके काम नहीं आता।'

२

भोर से कुछ देर पहले रात का सन्नाटा अभेद्य रूप से गहरा हो जाता है। छोटी-सी आवाज़ भी साफ-साफ सुनाई दे जाती है। बगल में सोई श्यामकली का रोना और बसंतलाल का खर्राटे भरना नितांत अप्रिय लग रहा है, यहां तक कि रतन की किसी परीलोक में खोए होने की सी प्रशान्तता भी उसे किसी तरह के सम्मोहन में बांध नहीं पा रही, जैसे इस सबका तो आदी हुआ जा चुका है और इनसे अपने अस्तित्व की पहचान करने में अब किसी तरह का आकर्षण नहीं रहा। लगता है, इनमें रामकली का कोई वास्ता नहीं रह गया और कहीं एकाएक हरगुन पंडित सिर्फ इतना ही पुकारता निकल गया कि 'जै संतोषी माता की, जै गंगा मैया की!' तो रामकली को ऐसा लगेगा, जैसे वह एकाएक किसी नदी में डाल दी गई है।

बसंतलाल को उसने रात को उसके लौटते ही कह दिया था कि सुबह वह चुपके-से चल देगी, क्योंकि बच्चे जागे, तो उसको ज्यादा परेशान करेंगे। हो सकता है, रतना मां के साथ जाने की ज़िद करने लगे।

रामकली को लगा, वह सो नहीं पाएगी। धीमे-से उठकर उसने दरवाज़ा खोला और बाहर गली में निकल गई। लघुशंका से निबटने तक में ही उसने आस-पास के वातावरण और समय का लेखा-जोखा ले लिया और बिलकुल धीमे पांवों से वापस भीतर चली आई कि अभी रात खुलने में घड़ी-भर से कम नहीं।

जब तक हरगुन पंडित का खांसना और संतोषी मैया की जै बोलना उसके समूचे अस्तित्व पर चहलकदमी करता हुआ-सा आगे निकल नहीं गया, रामकली को लगातार यही लगता रहा कि बस, हरगुन पंडित का आना अब उसके ऊपर से भोर के पंछियों के झुंड की तरह गुजरने ही वाला है।

हरगुन पंडित जब वास्तव में बसंतलाल की कोठरी के बाहर वाली पतली सड़क से गुजरा, रामकली की आंखें लग चुकी थीं।

'जै संतोषी माता की "जै गंगा मैया की!' धुन के साथ कुछ क्षणों को टोह लेता-सा हरगुन पंडित, दुबारा अपेक्षाकृत ज़ोर से आवाज़ देता हुआ आगे बढ़ा, तो रामकली को ऐसा लगा, जैसे कोई उसके सपने में होता निकल गया हो। अपनी नींद, अपने असमंजस और अपने आत्मसम्मोहन में से उबरते-

उबरते रामकली को कुछ वक्त लग गया, लेकिन जब उठी, तो उसने बदलने के कपड़ों की रात से ही बांध कर रखी हुई पोटली को धीमे-से झोले में डाला। लगभग फुसफुसाते हुए वसंतलाल को जगाया और बोली, "तुम होले-से किवाड़ फेर लेना। धूप निकलने तक मैं लौट आऊंगी। थोड़ी-सी देर भी हो जाए, तो कमला पहलवान के यहां से पाव-भर दूध लेते आना। पैसों को मैंने कह दिया था कि दस-पांच दिन बाद में ही देंगे'''।"

वसंतलाल ने जोर से जमुहाई ली, तो रामो को बदबू का एक भभका-सा अनुभव हुआ और एक क्षण को ऐसा लगा, जैसे वसंतलाल ने अपना मुंह नहीं खोला, बल्कि रामकली के भीतर की सारी हड़बड़ी को टोहने के लिए अपनी कोई गुप्त आंख खोल दी है। सुबह-सुबह के बासीपन में वसंतलाल का चेहरा अपेक्षाकृत ज्यादा उम्रदार और बीहड़ लगता है।

रामकली ने बताशों की पुड़िया और अगरबत्ती झोले में डाली। पीतल का लोटा अपनी दायें हाथ की अंगुलियों में मंदिर जाने की सी मुद्रा में पकड़ा और यह कहती हुई बाहर निकल गई कि, 'शाम से डबल रोटी लाके रख दी है आले में। बच्चे उठें, तो चा के साथ दे देना। आज अब चीनी-पत्ती भी निबटने को है।'

अंतिम वाक्य कहते-कहते रामकली को लगा, घर की यह अभावग्रस्तता इस वक्त निहायत अप्रासंगिक लग रही है। नहान से लौटने पर देखा जाएगा। इस वक्त तो उसने हरगुन पंडित के हिस्से की दक्षिणा भी रख ली है। गरीबी और कंगाली का रोना-धोना तो ज़िंदगी-भर का लगा है। एक तो पाजेबें ज़्यादा वजन की नहीं, दूसरे रामकली जब चाहती है, तेज़ कदमों से भी इस तरह चल लेती है, जैसे निहायत धीमी और संतुलित लय में चल रही हो। इस वक्त मुंह-अंधेरे का वातावरण ऐसा चौकन्ना लग रहा है, जैसे कोई हिरन प्रतीक्षा में खड़ा हो। नीचे आंख किए चलती रामकली को अपनी पाजेबों का धीमे-धीमे बजना सिर्फ अपने ही कानों तक आता हुआ लगता रहा। घर पर्याप्त पीछे छूटते ही रामकली ने दूर-दूर तक अपनी आंखों की सीध में देखा, जैसे सुबह-सुबह की हलकी-सी धुंध के बीच से हरगुन पंडित पेड़ की तरह एकाएक उग आने वाला हो।

निगम चौराहे पर हरगुन पंडित उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। यहां आते-आते वातावरण की निर्जनता टूट चुकी थी और गंगा नहान को जाते स्त्री-

पुरुषों के बीच से होते हुए रामकली और हरगुन पंडित दोनों ही काफी दूर तक चुपचाप चलते रहे। पॉलीटेक्नीक वाले चौराहे तक पहुंचने के बाद रामकली अब पहली बार बोली, "क्यों हो, हरगुन पंडित, कर्नलगंज की तरफ से चलोगे, या डी० पी० स्कूल की? ये लो, हम तो तुमको 'पांयलागों' कहना भी भूल ही गई!"

इस बात का अनुमान स्वयं हरगुन पंडित ने भी लगाया कि अपना कहना पूरा करके रामकली धीमे से हंसी होगी। हालांकि प्रारम्भ से ही रामकली पीछे-पीछे, उसके पांवों पर पांव रखती-सी चली आ रही थी, फिर भी हरगुन पंडित को लगातार यही लगता रहा कि रामकली की आंखों का देखना उसकी पीठ पर नहीं, चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो रहा होगा। प्रयाग चुंगी चौराहे पर पहुंचकर दोनों एलनगंज के बीचोंबीच से गुजरने वाली सड़क पार करते हुए रेलवे क्रॉसिंग के पार पहुंच गए। बायें मार्ग पर अपना झोला ठीक से पकड़ने के लिए वह किंचित् रुकी, तो हरगुन पंडित ने भी पीछे मुड़कर अब पहली बार गौर से रामकली की ओर देखा और रामकली ने धीमे-से, लेकिन लगभग अचानक, अपनी आंखें ऊपर उठाते हुए हरगुन पंडित की ओर।

अब, ख़ास तौर से रेलवे-क्रॉसिंग के आगे निकलते ही, दूर-दूर तक का परिदृश्य पूनों की उजास में इतना उजागर लग रहा था कि भोर हो चुकने का विभ्रम हो जाना नितांत स्वाभाविक ही लग सकता था।

शायद हरगुन पंडित की रात भी काफी कुछ रामकली के स्मरण में बीती होगी, अन्यथा अब इस वक्त ज्यों ही रामकली ने उसे एकाएक आंखें ऊपर उठाकर अपनी भरपूर नज़र से देखा था, हरगुन पंडित किंचित् विचलित हो आया-सा दिखता नहीं। इस तरह की कौंध हरगुन पंडित के गौरवर्ण चेहरे में भर आई थी—खासतौर पर आंखों में, जैसे कोई चिड़िया किसी टहनी पर अपने पंजे जमाती है, कुछ उतनी ही एकाग्रता और अमूर्त्त दबाव के साथ हरगुन पंडित को घूरते हुए खुद रामकली को ऐसा लगा कि हरगुन पंडित के चेहरे पर की त्वचा उसके देखने के भार से धीमे-से कांपी है, जैसे कोई पतली टहनी एकाएक किसी चिड़िया के आ बैठने से हौले-से कांपी हो। वह धीमे-से मुस्करा उठी, "हरगुन पंडित, तुम्हारे मन में पछतावा तो नहीं ना?"

"किस बात का...?" हरगुन पंडित ने एकाएक ही कहा और फिर जैसे रामकली के मन्तव्य को समझने की सिर्फ कोशिश-भर कर रहा हो, बोला, "तुम्हारे एकाएक के हां भर लेने और अब साथ-साथ चलने से थोड़ा आश्चर्य

ज़रूर हुआ, रामकली ! तुम तो, शायद, जानती हो होगी, औरतों के साथ का बोलना हमसे ज्यादा बनता नहीं। हमारी उम्र का आदमी बिना घरवाली का हो, तो दूसरों की जनानियों से बतियाने में थोड़ा डर-सा लगा रहता है कि कहीं कुछ गलत ना मुंह से निकल जाए। गरीब आदमी औरतों में बदनाम हो जाए, तो बस्ती में रहना कठिन हो जाता है, रामकली…! और तिस पर से यों समझो कि हमारी रोजी-रोटी तो मंदिर की बदौलत निकलती है।"

रामकली को इतने लम्बे और व्यावहारिक किस्म के उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। उसने अनुमान लगा लिया कि अपने संकोची और भीरु स्वभाव के चलत हरगुन पंडित भीतर ही भीतर कुछ खिसियाहट भी अनुभव कर रहा होगा।

वह स्वयं समझ नहीं पाई कि ऐसा और इतने आकस्मिक ढंग से उसने क्यों किया ? उसने एकाएक अपना हाथ हरगुन पंडित के कंधे पर रखा और अत्यन्त आत्मीय ढंग-से बोली, "हम खुद ही नहीं समझ पा रही हैं हरगुन पंडित कि यों एकाएक के नहान की हमें क्यों सूझी ! गंगा मैया छिमा करेंगी, मैले जल की भरी गागर यों तो ऊपर-ऊपर उज्जर जल थहाए रहती है ना, लेकिन जरा-सा हिलाओ, तो झाड़-झंखार उतराय आता है ! है ना, हरगुन पंडित ?"

हरगुन पंडित का मन हुआ कि वह कहे कि रामकली तुम तो बहुत काव्यमयी वाणी में बोलती हो, लेकिन अपने-आपको बिलकुल निःशब्द पाया उसने। थोड़ी-सी अपनी गरदन घुमाकर हरगुन पंडित ने उधर रेलवे क्रॉसिंग के पार और इधर बांध मार्ग के काफी आगे तक सरसरी तौर पर देखा। इस बीच के फासले में, इस वक्त, कोई चलता नहीं दिखाई दे रहा था। हरगुन पंडित धीमे-से आगे झुका और उसने रामकली को अपनी बांहों में भर लिया।

रामकली को लगा, इस तरह की और इतनी रोमांचकता उसने इससे पहले कभी अनुभव नहीं की थी। उसने धीमे-से हरगुन पंडित को अलग किया और नई वधू के से आर्द्र स्वर में बोली, "अब चलो, हरगुन पंडित भोर होने वाली होगी !"

बांध मार्ग के इस सिरे से एकाएक हरगुन पंडित एलनगंज वाली सड़क पर पीछे की ओर मुड़ गया, "उधर दारागंज से बहुत चक्कर पड़ जाएगा, रामकली ! चलो, इधर से ही अलोपिन देवी के चौराहे पर निकल जाएं।"

रामकली का झोला अब हरगुन पंडित ने संभाला और मातृपट के ऊपर पुरानी गरम चादर को अपनी पूरी देह पर फैला लिया। आलोपी चौराहे तक पहुंचने तक भी दोनों आपस में बातें करते ही चले आए थे और रामकली को ऐसा लग रहा था, जैसे वह किसी तीर्थ-यात्रा से अधिक अलौकिक यात्रा पर है।

रामकली के मन में था कि वह हरगुन पंडित को बताए कि उसकी जिन्दगी में यह इस तरह की पहली शुरुआत है। वह अपने-आपको निरंतर एक अमूर्त रोमांचकता से आप्लावित महसूस कर रही थी और सोच रही थी कि जिस तरह की स्त्री-वंचना से हरगुन पंडित गुजरता रहा है, रामकली के साथ का यह चलना उसे भी कम विलक्षण नहीं लग रहा होगा। बिना एकटक हरगुन पंडित के चेहरे को देखे भी रामकली अनुभव कर रही थी कि उसके साथ चलते हुए वह कमर-कमर तक की नदी को पार करने की अनुभूति से गुजर रहा होगा।

अलोपी वाला चौराहा आ गया, तो एकाएक हरगुन पंडित बोला, "अभी तो ठीक से उजाला भी नहीं हुआ, रामकली, चा की तलब लगी है!"

रामकली धीमे-से मुस्कराई और हामी से सिर हिला दिया।

चाय की गुमटी पर भीड़ नहीं थी। एक कोने में किसी बैठने वाले का इंतजार करती हुई-सी बेंच पर दोनों बैठ गए, तो हरगुन पंडित ने अपना हाथ धीरे-से रामकली के बायें घुटने पर रख दिया, "तेरे साथ चलने में तो, रामकली, किसी देवी के साथ चलने का सा सुख है! सुनो, भैया, तनिक दो गरम चा देना!"

रामकली ने अपना शाल घुटनों तक फैलाकर हरगुन पंडित का हाथ ढक लिया और तब हवा में रंग बदलती चिड़िया की सी आकस्मिकता में हरगुन पंडित की ओर देखा। उसका पूरा चेहरा शरारत में खिल उठा, "क्यों, देवी के साथ 'मैया' लगाना क्यों भूल गए, हरगुन पंडित?"

रामकली का चेहरा जैसा हो आया, हरगुन पंडित को लगा कि एकांत होता, तो वह जोर से खिलखिला उठी होती। इस बीच जब दोनों साथ-साथ कभी एकाएक धीमे और कभी एकाएक तेजी से चलते यहां तक आए थे, तो रामकली कई जगह उन्मुक्त रूप से खिलखिला उठी थी और लगा था, प्रकृति में इस वक्त अब रामकली के अलावा और किसी चीज का अस्ति

संगम वाली सड़क पार करके बांध वाली चढ़ाई के बाद का परिदृश्य रामकली के लिए सचमुच अद्भुत था। यों शायद तीन-चार बार रामकली शादी के बाद भी यहां आ चुकी है—कभी सुबह-सुबह, कभी दोपहर के वक्त। उसके लिए यह साफ-साफ पहचानना कठिन है कि आज प्रकृति इतनी रोमांचक उसे इतनी सुबह-सुबह आ पहुचने के कारण प्रतीत हो रही है, या हरगुन पंडित के साथ की यात्रा के कारण ?

उजाला हो चुका था। बांध की ऊंचाई पर से देखने पर यही लगता था, जैसे यह सारा परिवेश एकाएक ही प्रकट हुआ हो। दूर-दूर तक, जमुना पुल से इधर झूंसी तक का विस्तृत परिवेश और अपनी जलराशि को रूपगर्विता संन्यासिनियों के से तेवर में धारण किए बहती गंगा और जमुना। रामकली के मुंह से एकाएक ही 'जै गंगा मैया, जै जमुना मैया' निकला और वह धरती पर झुक गई। कुछ क्षणों को वह हरगुन पंडित की उपस्थिति को भूल गई और जब हरगुन पंडित ने कहा कि 'तुम तो रामकली, कनखलवालियों का सा साष्टांग दण्डवत मार रही हो ?' तो वह तुरंत उठ खड़ी हुई। उसने न हरगुन पंडित की ओर पलटकर देखा और न कुछ कहा, लेकिन हरगुन पंडित को इस बात का अहसास हो गया कि रामकली किंचित् अप्रसन्न हो गई है।

रामकली चुपचाप आगे बढ़ती चली गई। हरगुन पंडित के छाया की तरह पीछे-पीछे आने को वह अपने समूचे अस्तित्व में अनुभव कर रही थी, लेकिन संगम के किनारे पहुंचते-पहुंचते तक के बीच वह लगातार चुप ही रही। इस बीच वह अपने-आप में डूबी जरूर रही थी, लेकिन इस बात की प्रतीति उसे पूरी थी कि यहां निर्जनता या सन्नाटा कहीं नहीं है। विशाल माघ मेला क्षेत्र में इधर-उधर चींटियों की सी कतारों में छितराए हुए लोग संगम के मुहाने तक आकर जनसमूह में परिवर्तित हो गए थे। रामकली ने संगम के किनारे नहाते स्त्री-पुरुषों को देखा और उसे लगा कि वह भी उन्हीं में से एक हो गई है। इस बीच हरगुन पंडित जरूर कुछ बातें करता रहा था, खास तौर पर कल्पवासियों के बारे में कि ये लोग माघ-भर यों ही कुटिया बनाकर रहते हैं और अपने कायाकल्प की कामना करते हैं।

जब तक रामकली तैयार हुई, हरगुन पंडित घुटनों तक पानी में जा चुका था। रामकली को ध्यान आया कि हरगुन पंडित ने उसके इस अकस्मात के

अलगाव को अनुभव कर लिया है। वह भी गंगा में उतरने को हुई। पहला ही कदम गंगा के जल में रखा था कि उसे लगा, जैसे एकाएक ही वह सम्पूर्ण रूप में उस जलराशि में खिंच गई है। अत्यन्त सधे हुए कदमों से रामकली हरगुन पंडित के समीप पहुंच गई और अपनी नाक को अगूठे तथा तर्जनी से दाबकर उसने डुबकी लगा ली।

बांध से संगम-क्षेत्र तक का फासला कम नहीं था। यहां तक आते-आते और नहाने के लिए तैयार होने में काफी समय लग गया था और उजाला निरंतर बढ़ता गया था। पानी में अभी भी निहायत अमूर्त-सी ऊष्मा थी और रामकली डुबकी लगाकर अपने सिर को बच्चों के से कौतुक में हिलाती जलराशि में से एकाएक ही बाहर निकली, तो उसे लगा कि डुबकी लगाकर सीधे खड़े होते ही वह सम्पूर्ण रूप में विवस्त्र हो गई है। एकाएक ही उसे हरगुन पंडित की उपस्थिति का अहसास हुआ। डुबकी लगाने में वक्ष पर त्वचा की तरह मढ़ गयी-सी अपनी धोती को अपने सुडौल स्तनों पर से उसने बड़ी कठिनाई से थोड़ा-सा आगे को और खींचा और फिर दोनों हाथ आपस में गूंथ लिए।

रामकली ने अनुभव किया, लज्जा और स्त्रीत्व के इतने बड़े मायालोक का साक्षात्कार उसने आज तक कभी नहीं किया। हरगुन पंडित इस वक्त कहां है, यह देखने के लिए उसने आंखें उठाईं, तो और कुछ नहीं देखा, सिर्फ इतना ही दिखा कि सामने सम्पूर्ण रूप से सिंदूरी सूर्यदेवता पूर्वी क्षितिज पर सिंहासनारूढ़ सम्राटों की सी मुद्रा में आसीन दिखाई दे रहे हैं और आंखें सिर्फ सूर्य के प्रतिबिम्बों से भर गई हैं।

कुछ क्षणों तक यों ही अभिभूत रहने पर चेष्टा करके रामकली ने अपने हाथों को वक्ष पर से प्रणाम करने की मुद्रा में हटाया और आंखों को सूर्यदेवता पर से, तो देखा, हरगुन पंडित उसीकी ओर रुख करके खड़ा है।

रामकली को लगा, इन कुछ क्षणों में ही उसका स्त्रीत्व सम्पूर्ण रूप में उजागर हो गया है। उसको लगा, आंखें मूंदते ही वह अपने-आपको हरगुन पंडित की आंखों से देखने लगती है। "और उसे लगता है, कि जलराशि में डुबकी लगाने के बाद बाहर निकलने के बाद वह केंचुल उतारने के बाद की सर्पिणी की तरह चमकदार हो आई होगी। हरगुन पंडित की बताई हुई कल्पवासियों के कायाकल्प की बात अब रामकली को एकाएक याद आई और उसने हरगुन पंडित की ओर देखते हुए फिर गोता लगा लिया।

पानी के भीतर रहते ही, उसके मन में अचानक आया कि अगले

अमावस्या वाले नहान में वह वसंतलाल को साथ लेती आएगी और फिर इसी तरह इस अनंत-सी जलराशि में डुबकी लगाएगी और तब एकाएक इसी मुद्रा में वसंतलाल की आंखों के ठीक सामने खड़ी हो जाएगी—अपने सम्पूर्ण स्त्रीत्व को उजागर करती हुई।

३

पास में ही किन्हीं लोगों ने अपने छोटे बच्चे को डुबकी लगवाई तो उसका रोना रामकली की त्वचा को ठंडी, वेगपूर्ण हवा की तरह छू गया। उसे अपने दोनों बच्चों की स्मृति हो आई और वह कुछ उड़ान भरने की तैयारी में होते हुए जलपक्षी की सी स्थिति में खड़ी ही रह गई। बच्चों की याद आते ही, रामकली की एकाग्रता टूट गई। लगभग कमर से थोड़े ऊपर तक गहरे पानी में डुबकी लगाने और बाहर निकल आने के बीच का सिर्फ कुछ क्षणों का अन्तराल ही उसे काफी लम्बा प्रतीत हुआ। अपने गीले बालों को, झटकने के बाद, उसने अपने सामने की तरफ फैला लिया। पहली बार जब वह जल से बाहर निकली थी, अपने औरतपन के उतने उजागर साक्षात्कार से स्वयं ही स्तम्भित हो गई थी। उसके भीतर पिछले कुछ अरसे से लगातार जिस तरह का बदलाव आता जा रहा है, लगा कि जैसे वह सब आईने में पड़े अक्सों की तरह उजागर हो आया है। औरत के रूप में अनुराग का एक अमूर्त स्रोत है, जो रामकली को कहीं गहरी घाटी में बहती जलधारा की सी प्रतीति से भरे हुए है।

हो सकता है, जिस रूप में, और जैसा, इस वक्त रामकली ने अपने-आपको अनुभव किया—किसीने उसे वैसा देखा ही न हो? यहां तक कि हरगुन पंडित ने भी नहीं; क्योंकि चारों ओर जिस तरह की भीड़ है, उसमें सिर्फ गंगा नहान का वातावरण छाया हुआ है। यह तो उसके मन का चोर है, जो उसे विचलित कर रहा है।

रामकली ने, इस बार, निश्चित भाव से दूर-दूर तक देखा। संगम पर से किले की ओर लौटती, और उधर सरस्वती घाट पर से संगम की ओर आती, नावों को देखना अत्यन्त मोहक लगा उसे। उसने देखा, हरगुन पंडित सूर्य-नमस्कार की मुद्रा में उसकी ओर पीठ किए खड़ा है। मन तो हुआ कि अपने हाथों से उसकी पीठ पर पानी उछाल दे, लेकिन अपने बचकानेपन पर अंकुश

रखते हुए, यह कहती बाहर निकल आई कि—'हरगुन पंडित, जरा जल्दी करना। हम किनारे जाकर, दीया जला लें। घर पर बच्चे इन्तजार करते होंगे।'

बाहर के भीड़-भरे एकांत में, रामकली अपने मन को गंगा-पूजन के प्रति एकाग्र कर लेना चाहती थी कि अचानक उसे फिर अपने दोनों बच्चों की याद हो आई। बसंतलाल ने यह भी नहीं पूछा था कि 'इतनी भोर में किन लोगों के साथ जा रही हो नहान पर?' उसने शायद, यही सोचा होगा कि जब मुंह-अंधेरे जा रही है, तो पास-पड़ोस की पहचानवालियों के साथ ही जा रही होगी।...लेकिन, हो सकता है, देर हो जाने पर इधर-उधर पूछे और पता चले कि कहीं अकेली न चली गई हो?

रामकली ने महसूस किया कि जब तक रात थी और रात का धीरे-धीरे बीतना था, तब तक सारा ध्यान हरगुन पंडित पर केन्द्रित था और लगातार एक स्वप्न में होने की सी प्रतीति थी। ज्यों-ज्यों धूप गहरी होती जाती है, मन बसंतलाल और बच्चों की ओर मुड़ता है। घर लौटने की उतावली बढ़ती जाती है।

चारों तरफ कीर्तन भजन की धुनों का शोर, लाउडस्पीकरों की अधिकता के कारण, गड्ड-मड्ड होता चला गया है। किसी भी तरह के गोपनीय वार्तालाप की इस माघ मेले में एकान्त से भी ज्यादा सहूलियत हो सकती थी, लेकिन रामकली को लगा कि अकारण ही उसका मन उचाट हो आया है और बातें करने का उत्साह नहीं रहा।

हरगुन पंडित के किनारे आने तक, रामकली दीया-अगरबत्ती कर चुकी थी। रामकली के अनुरोध पर हरगुन पंडित ने विधिवत् गंगा-पूजन किया और प्रसाद आगे बढ़ाया, तो रामकली ने हलके-से मुस्कराते हुए, हरगुन पंडित के पांवों पर अपने दोनों हाथ रखे। जब तक मैं हरगुन पंडित ने 'जीती रहो, सदा सुहागिनी बनी रहो,' कहा, रामकली ने अपने हाथ ऊपर उठाकर, आंचल छोर में बंधे पैसे बाहर निकाल लिए, "अपनी दछिना ले लो, हरगुन पंडित!"

हाथ में दछिना लिए, किंचित् आत्म-गरिमा की सी मुद्रा में हो आई रामकली की ओर एकटक देखते हुए, हरगुन पंडित को बांध मार्ग पर से वापस मुड़कर, गुलनगंज और मोहनबनियाचाम के बीच के अंधेरे और गन्दे

कली के साथ का चलना याद आया। रामकली का वह खिलखिलाना आया, जो संतोषी मां के मातृपट को शरीर पर से चील की तरह ले ाता हुआ-सा प्रतीत होता था।

हरगुन पंडित के मन का असमंजस चेहरे पर उभर आया। रामकली ने पने दोनों हाथों को आगे बढ़ाकर, दक्षिणा को धीमे से, हरगुन पंडित के दायें ाथ में थमा दिया। नहाने के बाद वर्षा के थम चुकने पर की वनस्पति की सी ाजगी में दिखती हुई रामकली की लम्बी अंगुलियों के स्पर्श को हरगुन पंडित सिर्फ झेलता ही रह गया। रामकली बोली, "यह तो दस्तूर है, हरगुन पंडित! रीति तो निभानी ही चाहिए ना? अब हमारा जी न दुखाओ।"

हरगुन पंडित को भौंचकपन में ही छोड़, रामकली ने अपने गीले वस्त्रों को संभाल लिया। बोली, "चलो वापस लौट चलें।"

बड़े हनुमान जी के मंदिर तक आते ही, रामकली ने निगम चौराहे के पीछे वाली सड़क पर रहने वाली कई जान-पहचान की औरतों को देख लिया और सिर्फ इतना कहती हुई, तेज़ी से उनकी ओर निकल गई 'अब तुम चलो, हरगुन पंडित! हम जान-पहचान वालियों के साथ लौट चलेंगी।'

हरगुन पंडित को लगा, रामकली उसे एक दलदल तक पहुंचाकर, उसकी नियति पर छोड़ गई है। उसका मन हुआ कि वह भी तेज़ी से आगे बढ़े और रामकली की बगल से यह कहता हुआ निकल जाए कि 'अच्छा बेवकूफ बनाया तुमने हमको, रामकली! आइंदा से 'हरगुन पंडित हरगुन पंडित' पुकारने की कोई ज़रूरत नहीं। तुम अपने घर भलीं, हम अपने घर।'...लेकिन सारा विषाद सिर्फ मन में ही घुमड़कर रह गया और हरगुन पंडित उस दिशा में मुंह किए खड़ा रह गया, जहां रामकली के जाते हुए होने का अब सिर्फ अहसास-भर पीछे छूट गया था। जब तक में हरगुन पंडित अपने-आप में वापस लौटता, बांध के उस पार औरतों का वह पूरा झुण्ड आंखों से ओझल हो चुका था।

४

रिक्शा कोठरी के सामने रोककर, भूरे ने काफी ज़ोर से घंटी बजाई थी। कहीं उसके मन में भी था कि बच्चों को उनकी मां के वापस आने की सूचना देने का श्रेय उसे मिले। बच्चे कमरे में सोए भी होंगे, तो जागेंगे और तेज़ी

बाहर की ओर लपकेंगे और रामकली को देखते ही चौंकेंगे कि बाबू के साथ रिक्शे मे यह कौन औरत बैठी है ? बड़का रतना तो, शायद, तुरत पहचान भी ले? लेकिन भूरे का सोचा, सोचा ही रह गया। बच्चे, शायद, बाहर खेलने निकल चुके थे।

स्वय रामकली अब असंतुलित हो आई थी। घर का दरवाजा किसी सयानी औरत की सी आखों से घूरता लग रहा था। यह दरवाजा उसके अतीत मे काफी दूर तक दखल रखता है। पहली बार जब अपने बीमार पिता के लिए घाय लेने आई थी इस कमरे मे और बसता को करीब मे देखा था—और फिर जब दो बच्चों की मा इसी दरवाजे के भीतर हुई और "हा, वह दिन भी याद है रामकली को, जब इसे अपने हाथों मे चोरों की तरह बद करके, कमला पहलवान के घर चल पड़ी थी। रामकली कुछ विचलित हो आई। बसंतलाल के साथ आने का निर्णय लेते हुए उसने इस बात की कल्पना भी नही की थी कि बच्चो का सामना करते हुए वह इस तरह विचलित होने लगेगी।

आज वह एक लम्बे अन्तराल के बाद यहा वापस लौटी है।

बसंतलाल से उसने चौक मे भेंट के समय ही स्पष्ट रूप से कह दिया था कि वह, शायद, ज्यादा देर तक इस बार भी नहीं रुक पाएगी। बच्चों के सवाल को बसंतलाल जिस तरह से उसके आगे करने की कोशिश करता है, रामकली को वह चालाकी बरतना लगता है।

पिछली बार भी अचानक ही भेंट हुई थी। दशहरा उन दिनों सारे शहर पर छाया हुआ था। रामकली कटरा रामदल देखने गई तो थी, कमला पहलवान के साथ-साथ, लेकिन कमला पहलवान उसे चौमुहानी पर रामआसरे के घरवाली के साथ बिठाकर, चौक निकल गया था। बसंतलाल जाने किधर से आ रहा था कि रामकली को एकाएक दिख गया था। औरतों की भीड़ में से वह थोड़ा अलग निकल आई थी और परिचितों के से लहजे मे सिर्फ इतना पूछ लिया था, "क्यों कहां से आ रहे हो ?"

बसंतलाल के आग्रहपूर्वक यह कहने पर कि 'चलो, बच्चों को देख आओगी। उधर राय साहब की कोठी के बरामदे मे बैठे हैं—भूरे की भौजाई और फूलो ताई के साथ।'

रामकली को तब भी अपने दोनों बच्चों की आकृतियां स्मरण हो आई थी, लेकिन बच्चों के समीप जाने का मन बना नहीं सकी वह, और, यह कहती

हुई, औरतों में वापस लौट आना चाहती थी कि 'फिर कभी घर पर हो आकार देख लूंगी।' हालांकि रामकली जानती थी कि सामान्य दिनों में बच्चों से घर जाकर मिलना तो और भी कठिन है। लेकिन फिर भी रामकली के निकट यह बात स्पष्ट है कि अंततः बसंतलाल के साथ वह बच्चों को एक नज़र देख लेने के इरादे से चल पड़ी थी, तो इसमें बसंतलाल की भलमनसाहत का दबाव ज्यादा था। वह, शायद, अष्टमी का दिन था। एक दिन विजया-दशमी की संध्या तो वह बसंतलाल के घर भी पहुंच गई थी। वह पहला अवसर था, जब रामकली कमला पहलवान के घर बैठ जाने के बाद बसंतलाल के दरवाजे पर गई थी। उसके बाद भी इक्का-दुक्का भेंट हुई है और बसंतलाल ने अत्यन्त आग्रह के साथ कहा है, जैसे कि प्रायश्चित करना चाहता हो, लेकिन रामकली ने हमेशा साफ दो-टूक जवाब दे दिया है कि—'अब इस किस्से को खत्म ही समझा करो, बसंता! और हमरो—सच पूछो तो हमारे आंखों में अब वो नजर ना रही, जो तुम्हारे घर का रास्ता पहचानती थी।'

कहना तो हर बार रामकली यह भी चाहती थी कि 'वो दशमी के रोज भी हम नहीं आए थे तुम्हारे दरवाजे, बसंता, कमला पहलवान की मार ले आई थी।'··· लेकिन ऐसा कहने में अपने छोटेपन को स्वीकार कर लेने की सी तकलीफ महसूस होती थी, इसीलिए न रामकली ने कमला पहलवान के द्वारा मारे और प्रताड़ित किए जाने की बात तब कही थी बसतलाल से, न दुबारा किसी मुलाकात में कही और न आज कहती है—और न फिर कभी कहेगी। कौन जानता है कि तब खुद बसंता ही यह कह देता कि—'ब्याहते का घर छोड़कर जाने वाली औरत को अगर कमला पहलवान ने 'हां, हां, सौ बार कहता हूं कि तेरी हैसियत मेरे लिए रण्डी से ज्यादा कुछ नहीं।' कह दिया, रामकली! ···तो कुछ नाजायज तो कहा नहीं ना?'

आज भी रामकली सोचती है, तो यही अहसास होता है कि उस दिन की तकरार में वजह बसंतलाल का बरताव नहीं था—उसकी अपने भीतर की ग्लानि और बौखलाहट थी। बाद के दिनों में, खास तौर पर कमला पहलवान को छोड़ अमोलकचंद के साथ जाने का फैसला लेने के अरसे में, कई बार रामकली के मन में आया जरूर था कि बसंतलाल का मन टोहकर देखे, लेकिन दर्पीला स्वभाव और बसंतलाल के साथ औरत की तरह रहने में वितृष्णा महसूस करने की स्मृति हमेशा आड़े आती रही। इसके अलावा बस्ती के लोगों—खास तौर पर जान-पहचान की औरतों—के बीच अपनी इस तरह की वापसी

के बाद का रहना किस तरह की फजीहतों के बीच का रहना होगा—इस बात की कल्पना मे ही तकलीफ होती थी। जहां किसी औरत से दूपरदू झगड़ा हुआ, वह सबसे पहले इसी नाजुक जगह पर मार लगाएगी कि 'कमला पहलवान की रखैल रहकर बहुत पहलवानी सीख आई हो, रामकली !'

पीपल वालों की बहू तो उससे सौतों का सा डाह करती है। कहीं आगे-पीछे बसंतलाल से ही आम रह गई, तो डलिया में पड़े बच्चे को देखकर, आस-पास खड़ी औरतों को यों कुहनी से ठेलने लगे कि—'यह बच्चा तो हमें कमला पहलवान पर गया दिखता है, रामो !'

अपने औरतपन के जोश मे जुआरियों का सा दाव खेल जाने के बाद, जिन्दगी अब जहां भी पहुंच चुकी है, अपनी ही जगह पर रहकर उसे झेल जाने में ही रामकली को अपने स्वत्व की रक्षा दिखाई देती है। अमोलकचद के स्कूटर के पीछे बैठते हुए रामकली ने सबसे पहली मानसिक तैयारी यही तो की थी कि अब, बस, इसी ठीहे पर बस करनी है। एक जगह इज्जत से रहते हुए, खाते-पीते घर की बहुओं की सजधज और तेवर में कभी कदाचित् बसंतलाल की बस्ती में भी चली आई, नाक-भौं ससुरिया लाख सिकोड़ें, कलेजा तो बैठ ही जाएगा कि 'बैठी तो बड़े ही घर के दरवाज़े दिखती है।'

अरे, जैसा रामकली का नाक-नक्श था, जैसा स्वरूप दिया था देनेवाले ने, कहीं बड़े घर में पैदा हुई होती, तो इन नामुरादों की रामकली की एड़ी छूने की ताव न पड़ती। इसी तरह की जाने कितनी अड़चनें खुद रामकली के भीतर हैं, जो बसतलाल की भलमनसाहतों पर भी भारी पड़ने लगती हैं। ये ठीक है कि जिस बड़प्पन मे उसे बसंतलाल रखता था, वैसा व्यवहार न कमला पहलवान ने बरता, न अमोलकचद के बूते का दिखता है, लेकिन अब खैर आखिर—आखिर इसी में दिखती है कि बीते को अंतिम रूप से बिसार दिया जाए।

यह सिर्फ इस बार हुआ है—कि रामकली को बसंतलाल के घर से दशमी के दिन की वापसी तलवे मे लगे कांटों की तरह याद है और फिर भी वह पालतू गाय से निरीहपन में यहां तक चली आई है। रामकली के लिए अपने भीतर के इस बदलाव को शब्दों मे बांध पाना कठिन है। अमोलकचद की अनुपस्थिति मे वह यों ही समय गुजारने के इरादे से बाहर निकल आई थी। अचानक ही मन मे आया कि सारी रात तो अकेले काटनी है। दोपहर-भर सोई रही है, तो अब नीद आना कठिन है—क्यो न कोई फिल्म देखकर, कुछ

समय काट निकाले। सिनेमा देखकर, डेरे में पहुंचते-पहुंचते दस बज जाएंगे, थकी भी रहेगी। नींद आते देर नहीं लगेगी।

वसंतलाल तो उसे आकस्मिक रूप से तब दिख गया, जब वह कृष्णा स्टोर्स के अन्दर एक छोटा और अच्छा-सा आईना खरीद लेने के इरादे से पहुंची।

वसंतलाल उस समय छोटी-छोटी सूती बनियाइनें देख रहा था। पीठ चूंकि उसकी इस तरफ थी, इसलिए रामकली उसे पहचान नहीं पाई, अन्यथा वह चुपचाप नीचे उतरकर, कहीं अन्यत्र चली गई होती। वसंतलाल के दिख जाने का अर्थ यही होता है कि वह घर चलने का आग्रह करे। और आग्रह भी ऐसे आत्मीय स्वर में कि जैसे उसके मन में रामकली के प्रति कहीं भी नफरत या कुढ़न की भावना न हो।

रामकली को उसका स्वभाव आश्चर्यजनक लगता है। उसके चेहरे या आंखों में, कहीं भी किसी तरह की अप्रियता या आत्मपीड़न की यंत्रणा उसे कभी दिखाई नहीं दी है। न उसकी आवाज़ या कहने के ढंग से ही कोई यह कल्पना कर सकता है कि वह अपनी उस पत्नी से बातें कर रहा है, जो उससे ज़रा-ज़रा-सी बातों पर झगड़ करके घर से पलायन कर गई। सिर्फ पलायन ही नहीं, बल्कि पहले तबेले वाले कमला पहलवान और अब कल्याणी देवी वाले अमोलकचंद ठेकेदार से उसके अनैतिक सम्बन्धों की बात जान-पहचान के लोगों से भी छिपी नहीं रह गई।

विचित्र बात यह भी है कि न वह उसके तिलियरगंज वाले डेरे पर कभी गया, उसे वापस बुलाने या किसी प्रकार का झगड़ा-फिसाद करने और अब लगभग तीन महीने बीतने को हो आए हैं, न वह कभी कल्याणी देवी वाले ठिकाने की खोज में दिखा है। सिर्फ जब भी संयोगवश कहीं आमने-सामने का गुज़रना हो गया है; एक आत्मीयतापूर्ण आग्रह उसके किंचित् भद्देपन की हद तक मोटे होठों पर से ज़रूर रामकली की ओर बढ़ आया है, "रामकली, चल, बच्चों को देख आएगी।"

आज भी यही हुआ है। जब तक उसे अनदेखा करके, रामकली दुकान से बाहर की ओर पलटती, वसंतलाल ने उसे देख लिया और उसके चेहरे पर एक लगभग अमूर्त-सी मुस्कराहट अपने भरपूरपन में फैल गई, जैसे भीड़ में खोया बच्चा अचानक दिखाई दे गया हो।

वसंतलाल की तरफ से अब न कोई प्रतिरोध है और न आग्रह। अपनी ओर से रामकली इसे छोड़ चुकी है। लगभग वापस मुड़कर न देखने की सी निश्चयात्मकता के साथ। बच्चों का मोह जरूर समय-समय पर जागता रहा है, मगर समय के बीतने के साथ जैसे वह भी धीरे-धीरे मद्धिम पड़ता चला गया। हां, वसंतलाल की तरफ से इतना तय है कि वह बच्चों को छोड़ नहीं सकता और रह गई रामकली—उसके भीतर इतना लगाव कभी शायद, रहा ही नहीं कि बच्चों के बिना जी न सके।

वह तो सिर्फ इतना जानती है कि पुरुष-विहीनता का बोझ ढोना उसके बस में नहीं। यों अंतिम रूप से घर छोड़ने का फैसला लेने के बाद मां की सी आग्रहशीलता जताने की औपचारिकता-भर में उसने घर छोड़ने के दिनों एक बार इतना अवश्य कहा था कि 'मैं बच्चों को भी साथ लेती जाऊं?'··· बस, सिर्फ इतने से ही शांत बैठे हुए वसंतलाल की आंखें पत्थरों जैसी सख्त हो आई थीं और उसने निहायत निर्णयात्मक स्वर में कह दिया था कि—'रामकली, तू तो अपने बाप की धरोहर थी, तुझे मैंने बंधनों से मुक्त किया। जो तुझे अच्छा लगे, मैं कभी तेरे आड़े आऊंगा नहीं।··मगर ये बच्चे मेरे हैं, मेरे मरने से पहले तो इन्हें कोई मुझसे जुदा कर नहीं सकता।'

रामकली को यही लगता है कि एकाएक भेंट होने पर वसंतलाल के आग्रह को जो वह एकाएक टाल नहीं पाती है, उसकी तह में जितना बड़ा कारण बच्चों के देख आने का एक तलघंट की तरह कहीं भीतर दीप रह गया मोह है, वसंतलाल की सदाशयता और सहनशीलता का उससे कम दबाव नहीं।

वसंतलाल ने जल्दी-जल्दी दो छोटी बनियाइनें और एक बट्टी साबुन, पचास ग्राम टाफियां एक लिफाफे में रखवा ली, तो रामकली समझ गई, यह उतावली उसीके लिए बरती गई है। वह सहज भाव से आगे बढ़ आई और वसंतलाल के हाथ में थमा हुआ पांच का नोट उसने वापस उसकी मुट्ठी में भींच दिया। खुद एक दस रुपये का नोट आगे बढ़ाते हुए बोली, "एक पैकेट बढ़िया वाले बिस्कुटों का और रख देना। थोड़ी टॉफियां भी।"

वसंतलाल आपत्ति करने को होंठ खोल ही रहा था कि रामकली धीमे से मुस्करा दी, 'तुम्हारे साथ चलना तो होगा? ये चीजें बच्चों के लिए मैं लेती जाऊंगी।"

बाहर निकल आने पर, वसंतलाल ने पूछा, "तुम किसी खास काम में

तो नहीं आई हो ?'

रामकली बोली, "दिन-भर बेकार बैठे-बैठे जी ऊब गया था, सिनेमा देखने की सोचकर निकल आई थी।···मगर अब इस वक्त तुम मिल गए हो, तो तुम्हारे साथ चली चलूंगी। अमोलकचंद कल तक के लिए बाहर गया हुआ है। ये रिक्शे वाले, क्यों भइया, ममफोर्डगंज की तरफ चलोगे ?"

वसंतलाल ने रामकली का रिक्शे वाले को बुलाने की मुद्रा में उठा हुआ हाथ धीमे से नीचे को कर दिया, "उसे मत बुला, रामकली, मैं खुद रिक्शा लेते आया हूं। वहीं 'रूपवानी' सिनेमा के सामने रुका हुआ है। तुझे कौन-सा सिनेमा देखना था ?'

बढ़ती हुई भीड़ और संकरे रास्ते के कारण, रामकली को थोड़ा-सा एक ओर हट जाना पड़ा। जीरो रोड वाली मुख्य सड़क गिनती के कदमों के फासले पर थी। वहां तक रामकली चुपचाप चलती रही। वह भी कुछ नहीं बोला, मगर ज्योंही दोनों जीरो रोड पर पहुंचे, 'रूपवानी' की तरफ मुड़ते हुए वसंतलाल को उसने रोक लिया, "सुनो, अपना रिक्शा तुम यहीं किसी दुकान या सिनेमा के अहाते में जमा करवा दो। तुम आगे से रिक्शा खींचते रहो और मैं बैठी रहूं, कुछ अच्छा नहीं लगेगा। यहां से कोई दूसरा ही रिक्शा कर लो। पैसे मैं दे दूंगी।"

उसका चेहरा थोड़ा-सा सख्त हो आया। रामकली का अहंकार उसे अक्सर विचलित कर देता है। एक सीमा तक बर्दाश्त करने के बाद, वह भी कुछ कहने पर उतर आया था, तो बस, फिर रामकली थमती नहीं थी। गुस्से में उसका चेहरा तन आता है। आंखें आकाश से डबडबा उठती हैं। कठोर शब्दों के बोझ से उसके पतले-से सांवले होंठ, बाहर की ओर फैल जाते हैं। रामकली की पुरानी छवि वसंतलाल को अभी भूली नहीं है।

वह नहीं चाहता था कि आज किसी तरह की तनावपूर्ण स्थिति आए। उसने मन में निश्चय-सा कर लिया कि आज रामकली जैसी सहजता में बच्चों के पास चलने को तैयार हो गई है—वैसे ही अपने डेरे पर वापस चली आए। हालांकि वह जानता है कि रामकली पिछली बार सिर्फ इसीलिए नहीं लौट आई थी कि वह भी कुछ क्रुद्ध हो गया था, बल्कि अपने स्वभाव और रहन-सहन के ढंग से वह लाचार हो चुकी है; मगर उसे अपने भी कुपित हो जाने पर एक हलका-सा पश्चात्ताप लगातार अनुभव होता रहा है कि शायद है, अन्यथा रामकली उस तरह न लौट जाती।

रामकली अपनी जगह रुकी रह गई, तो वह सिर्फ इतना ही बोला, "तू आ तो सही, रिक्शा मैं नहीं चलाऊंगा। भूरे साथ है। जब कभी मैं फुर्सत में होता हूं, या प्रेस का काम करता हूं—सब भूरे को दे देता हूं चलाने को। मेरे साथ आया हुआ है। रिक्शा वही देख भी रहा है। यहां सिनेमा के अहाते में रिक्शा रखने भी नहीं देते, कहीं रख भी दो, लौंडे-लपाड़े घण्टी-चैन निकाल ले जाते हैं।"

अपनी बात पूरी करते, न करते, एकाएक उसे आशंका हुई कि रामकली कहीं यह न कह दे कि 'घंटी और चैन के पैसे मुझसे ले लेना।'

पहले भी यह अक्सर यही करती रही है। जहां किसी खर्च की मद में वसंतलाल ने कटौती करने की कोशिश की नहीं कि वह तुरन्त अपनी कमर में से धोती का किनारा बाहर खींच लेती थी—'बाकी जो लगते हों, मुझसे लेते जाओ।'

कुछ हड़बड़ाहट की सी मुद्रा में वह एक सांस में कह गया, "यह रिक्शा मेरा खुद का खरीदा हुआ है। कुल मिलाकर साढ़े आठ सौ का बैठा था, मगर दूसरे रिक्शे वाले भी यही कहते हैं कि बढ़िया कसा गया है। 'डबल बैरल' है, चढ़ाई पर भी खींचकर नहीं चलाना पड़ता। रायसाहब के यहां तो मुश्किल से यही आठ की सुबह से ले के संध्या के पांच तक की ड्यूटी भरनी पड़ती है। यों तो किराये का रिक्शा मिल जाता है—पहले हम लोग किराये का ही चलाते भी रहे हैं। यह रिक्शा मैंने खरीद यों लिया कि कुछ ऊपर की आमदनी हो जाए। अब भूरे चलाता है, तो भी कुछ आमदनी हो ही जाती है। बच्चों को अपनी सामर्थ पहुंचते तक की पढ़ाई तो करवा ही देनी है। बड़का रतन तो पिछली बार तेरे सामने-सामने ही स्कूल से वापस लौटा था ना? जब भी मौका रहता है, बच्चों को रिक्शे से ही छुड़वा-लिवा लाता है भूरे। फूलो ताई कहती भी है कि बसंता को बड़े लोगों की सी हिर्स हो गई है। मेरा ये है कि एक भगवान का आसरा है—शायद है, बच्चे किसी किनारे लग ही जाएं।" अपनी बात पूरी करते-करते वसंतलाल गहरे आत्मतोष से भर गया। उसकी आंखें थोड़ी-सी नम हो आईं।

रामकली ने इस बार गौर से उसकी तरफ देखा, तो वसंतलाल को एकाएक याद आ गया कि पिछली बार झगड़े की शुरुआत इसी बात को लेकर हुई थी कि वह फटी हुई कमीज में ही स्कूल से लौटा था और रामकली का हाथ तुरन्त अपनी धोती की किनारी पर पहुंच गया था—'इसके लिए सवा गज-डेढ़ गज

का सावुत टुकड़ा तो ले लिया होता ?' और उसके मुंह से भी यह वात निकल गई थी कि—'रामकली, जिनको तूने नाजायज़ औलाद की तरह छोड़ दिया, उनके ढंके-नंगे की चिन्ता बेकार में तू क्यों करती है ? नई कमीज़ भी सिलवा रखी है। वह कुछ मैली पड़ी थी, पुरानी में ही चला गया।'—वस, रामकली उसके वाद दो-तीन मिनट भी सिर्फ़ इसीलिए रुक गई थी, शायद, कि अपने अन्दर इकट्ठा हो आए गुस्से को थूक सके।

वसंतलाल क्षण-भर में पिछली वार के घटित हुए को अपने भीतर ही भीतर दोहराकर, यह कहता हुआ आगे को वढ़ गया "रामकली, ऐसा कर तू यहीं पर ठहरी रहना। जाना तो इधर से ही होगा, मैं रिक्शा यहीं लिवा लाता हूं।"

कुछ ही देर में, वसंतलाल रिक्शे पर वैठा हुआ आ गया और दाईं ओर को सरकता हुआ, रामकली से वोला, "आ।"

रामकली के एक हाथ में सामान थमा हुआ था। एक पांव रिक्शे की पायदान पर रखते हुए, उसने अपना दायां हाथ उसकी तरफ वढ़ा दिया। वसंतलाल ने हाथ खींचकर विठा लिया, तो रामकली की कई-एक अंगुलियों के धीमे-से चटखने की आवाज़ उसे सुनाई दे गई और वह अपने अन्दर से प्रतिरोध के वावजूद, रामकली की मांसल और सांचे में ढली हुई-सी अंगुलियों पर से एकाएक अपनी दृष्टि हटा नहीं पाया। जव वह सतर्क होकर, सामान्य मुद्रा में सामने की ओर मुंह करके वैठा, तो रामकली की आंखों में कौंधता दर्प उसे साफ-साफ दिख गया।

५

रामकली जितनी साफ-सफ्फाक साड़ी में थी और जिस तरह कीमती कपड़े का वना ब्लाउज़ वह पहने थी, वसंतलाल को फिर यही अहसास हुआ कि—'वसंता, रामकली तेरे औकात की नहीं।'

यह स्मरण करना उसे इस समय, काफी यन्त्रणापूर्ण लगा कि रामकली ने अत्यन्त अहंकार-भरे शब्दों में पिछली वार यह भी स्पष्ट कर दिया था कि 'लगातार नौ साल तक मैंने तेरी आग जिस तरह बुझाई है, उसके स्वाद को न तो तू भूला है, वसंता, और न कभी भूलेगा। तेरे मन में तो हाथ में आई रोहू मछली के तालाव में चले जाने का सन्ताप भरा है। नाटक तू लाख वच्चों का

कर ले, मगर इरादा तेरा यही दिखता है कि तेरी बोरसी में इकट्ठा करके रखी हुई-सी अगन को बुझा जाऊं।—और ये बात तू गांठ बांधकर रख ले, तेरी ये प्यास मैं बुझाने से रही। आदमी या तो चूके ना—चूके, तो चाटे ना। जो दरवाज़ा हम उढका गई, उसीके भीतर फिर से सुहागिनों की सी सेज सजाने में कुछ रखा नहीं, बसंता!'

बसंतलाल को व्यतीत हुए न जाने कितने प्रसग याद आते जा रहे थे। अपने अनजाने में, रामकली से थोड़ा-सा हटकर बैठने की चेष्टा कर ही रहा था कि रामकली मुस्करा दी, "क्यों, चुभ रही हू क्या?"

अपने इस तरह के अप्रत्याशित व्यवहार में रामकली और भी ज्यादा आकर्षक हो आती है। उसकी शारीरिक गठन और उसके साफ-सुथरे पहनावे से यह कल्पना करना किसीके लिए भी कठिन हो सकता है कि वह बसतलाल जैसे उम्रदार और सामान्य मजदूर या रिक्शेवाले की पत्नी हो सकती है—या कि रह चुकी है। रामकली के इस वक्त के साथ में उसे एक निहायत ठोस किस्म की सी स्थितिहीनता का अहसास हुआ और वह, किंचित् खिसियाया हुआ-सा, चुप ही रह गया।

अपनी विषाद-भरी चुप्पी के बीच उसे लगातार एक अदरूनी सन्नद्धता महसूस होती रही। उसे यही महसूस होता रहा कि वह किसी अजनबी औरत के साथ बैठे होने की सी रोमांचकता और द्विविधा में जकड़ता जा रहा है। रिक्शे के चलने की आवाज और आमने-सामने से गुजरती भीड़ के शोर के बीच में से शब्दों को खोजता हुआ-सा वह बोला, "रामकली, तू देवी की तरह कब और किस बात पर अचानक खुश हो जाएगी और कब किस बात पर नाराज—कुछ कहना कठिन है। पिछली बार तुझसे सटकर बैठा था। हाथ अनजाने तेरी छाती से छू गया, तो तू मेरे अन्दर बोरसी के अंगारे देखने लगी थी। अब उसी डर से थोड़ा परे को सरककर बैठ रहा हूं, तो तेरे को छुट्टा सूझ रहा है।"

बसंतलाल को इस बात की प्रतीति नहीं हो पाई कि अपनी बात पूरी करते हुए, वह खुद भी हंस पड़ा है।

"पान-सुरती की घुड़हा आदत तुम्हारी अभी भी गई नहीं लगती, बसंता! अब तो तुम्हारे सामने के सारे ही दांत छिदहा हो चुके। और सुनो, बसंता, नाटक तुम हमी से न किया करो—समझे? तुम्हारी तो वही मिसल है कि 'क्यों री, खसम कैसे कर लिया?' तो 'बहूजी, हम ना जानें। जाने वो

वाला ?'...'क्यों री खसम क्यों छोड़ दिया ?' हो...'' रामकली से वाक्य नहीं हो पाया।''

वसंतलाल को अपने हंसते हुए होने की साफ-साफ प्रतीति हुई और सियाहट के मारे, काफी भीतर से उफनाकर आती हुई-सी हंसी—उसके टे होंठों पर बुदबुदाकर, वहीं बैठ गई। रामकली के आगे इस तरह की तप्रभता से जकड़ जाने की स्थितियां अनगिनत बार आ चुकी हैं। वसंतलाल ाद करने की कोशिश करता है, तो आंखों के सामने आज से लगभग नौ-दस वर्ष पहले की सांवली और दुबली-सी लड़की आ खड़ी होती है। रामकली का वह तब का—शादी के ठीक दूसरे साल का—कहा हुआ आज भी भूलता नहीं है कि—'जब से तुमने अपनी घरवाली बना लिया—हमको तो हमेशा यही लगता है, नहीं, रामो ! बाप अभी मरा नहीं !'

यह वास्तविकता है कि जब मरते हुए किसना से रामकली को वसंतलाल के सुपुर्द किया था, तो उसने भी यही कहा था कि 'इसे सिर्फ घरवाली करके ही नहीं, बेटी की जगह पर भी जानना। बचपन से ही चंट रही है। इससे कभी चूक हो भी जाए, तो बर्दाश्त कर लेना।'

तो क्या रामकली का अनुभवी पिता इस बात की कल्पना तभी कर चुका था कि उम्र के इतने बड़े फासले में से रामकली चूक भी सकती है ? सोचता है, तो अपने दो बच्चों की मां के साथ एक अजनबी की तरह बैठे हुए होने की विडम्बना वसंतलाल को सचमुच शरीर में चुभती हुई अनुभव होने लगती है। फिर भी लगभग कई वर्षों तक अभ्यस्तता की सीमा तक वह जो सहनशीलता अपने भीतर बटोरता रहा है रामकली के लिए, वह संभालती है। जी एकदम छूटता नहीं।

विक्षोभ और आत्मीयता को रामकली के प्रति समान रूप से अनुभव करने की मनःस्थितियों से उबरना उसे सदैव कठिन लगता रहा है। रामकली की वापसी की सम्भावनाओं के लगभग समाप्त हो चुकने पर भी, उसे न जाने क्यों लगता रहता है कि रामकली की प्रतीक्षा उसे अभी भी है। न जाने व कौन-सी चीज़ है, जो शहद की मक्खी के टूटे डंक की तरह उसके अस्तित्व अटकी ही रह गई है।

''तू अगर मुझमें अभी भी अपना लालच देखती है, तो कुछ गलत न करती है, रामकली ! डेढ़ साल तो बीतने को आ ही गया है, तुझको बे हुए...'' —वसंतलाल ने इस तरह कहा, जैसे भूरे से दोनों की बातचीत

बचाना चाहता हो।

"बेघर क्यों ? तुम लोगों से अच्छे घर में रहती हूं।"

"चूने से पुती हुई दीवारों से ही घर बन जाता होता, रामकली, तो सेठ बेनीराम की धरमशाला सबसे बड़ा घर होता। न चाहते भी कुछ कह बैठता हूं; तू कहीं बुरा न मान लेना। यह तो तय जान कि जब तक अमोलकचन्द ठेकेदार तुझसे शादी नहीं कर लेता, घर-गिरस्थी का सा बेफिकरापन तुझे नसीब हो नहीं पाएगा। कमला पहलवान वाले किस्से से तुझे सबक लेना ही चाहिए, रामकली ! *जो औरत मर्द का सिर्फ जिस्म देखे—जी न देखे, उसे* समझदार कहना ठीक तो नहीं ना ? यों तू कहेगी, नसीहत देने वाला मैं कौन हूं तेरा ? मगर जिसने अपना करके माना होता है, उसे अपने पाले-पोसे पशु-पंछियों का भी मोह रहता है। तू तो अब ये भुला चुकी होगी कि शुरु-शुरु में तेरे बाल मैं खुद संवार दिया करता था और फूलो ताई मज़ाक किया करती थी कि 'यह बसंता तो सास की तरह इसे सवारता है।'···बड़का जब हुआ था, तो मुझे खुद भी हैरत हुई थी कि तुझसे बच्चा हो गया। तब तू ज्यादा से ज्यादा कितने बरसों की रही होगी ?"

"उन्नीसवां उसी भादों से लगा था। वो तो कुछ मुहल्लेवालियों से सीखा हुआ काम आ गया और कुछ फूलो ताई सास ने कानों में तेल की बूदों की तरह अच्छी-बुरी बातें गेर दीं। नहीं तो, उस कच्ची उम्र में हुए मूस जैसे लोथड़े को सम्भाल ले जाना मेरे बश की बात कहा थी ?"—रामकली का स्वर काफी कोमल हो आया था।

"तुझे अब कभी उन दिनों की अपनी नादानी याद आती है या नहीं, जब तू बड़के को दूध पिलाते में अपनी चूची ऐसे उसके मुंह पर कर दिया करती थी कि वह सांस भी नहीं ले पाता था ?"

"खूब याद है !"···रामकली ने मुस्कराते हुए, उसकी ओर देखा और शरमा-सी गई, "कच्ची उम्र के होते भी शरीर बहुत भर आया था उस बरस। छुटकी की बेर जितना दूध भले ही नहीं भरा।"

लगभग यन्त्र की सी त्वरा में, बसंतलाल की आंखें उसकी ओर घूम गई। रामकली ने सफेद रूबिया की छोटी बाहों का ब्लाउज़ पहना हुआ था। साड़ी हलके बैंजनी रंग की और पीली किनारी वाली थी। आठ अंगुल तक चूड़ियां भरवाने का शौक अब भी ज्यों का त्यों है। पिछली बार तो लिपस्टिक भी लगा रही थी। दो बच्चों की मां के चेहरे पर जिस तरह की झाइयां अक्सर

उभर आती हैं, खास तौर पर जो औरतें खाते-पीते घरों की न हों—रामकली में कहीं नहीं दिखतीं।

नहीं। रामकली से अपनी तुलना करने पर आत्महीनता के दंश से बच सकना सम्भव नहीं है। जब विवाह हुआ था, रामकली पन्द्रह की थी और वह लगभग बत्तीस साल का। उम्र की यह खाई रामकली की निरन्तर निखरती तरुणाई और उसकी ज़िम्मेदारियों से बोझिल होती चली जाती प्रौढ़ता के बीच जिस तरह पसरती चली गई हैं, बसंतलाल के लिए अब इसे अपने शरीर से लांघने की कल्पना भी सिर्फ अपने-आपको धोखा देना रहा है। मगर अब भी रामकली इतनी समीपता में से आकर्षित करती है, तो बसंतलाल अपने-आपको उन दिनों की स्मृतियों की चपेट में आ जाने से बचा नहीं पाता है, जिनमें से छनकर शेष रहे दोनों बच्चे अब भी उसके साथ हैं।

"छुटकी तो ज्यों-ज्यों ऊपर को आ रही है, तेरे ही नाक-नक्स पर आईना फिराती हुई-सी दिखती है। जब तक तू थी, हम लोग उसको सिर्फ छुटकी ही तो कहा करते थे? अब मैंने उसका नाम श्यामकली रख दिया है।"

"कभी-कभी तो मैं भी सोचती हूं कि तुम लोगों की दुनिया छोड़ चुकने और अब फिर कभी न लौटने के इरादे के बाद भी आखिर वह कौन-सी तनी बाकी बच गई कि मुद्दतों के बाद जब भी तुमसे मुलाकात हो जाती है, अपनी ज़बान तुम्हारी अंगुलियों में उलझी हुई-सी मालूम होती है और 'ना' हो ही नहीं पाती। सोचती हूं तो बच्चों की ममता से तुम्हारी भलमनसाहत का बोझ ज़्यादा दिखता है।" रामकली एकाएक काफी गम्भीर होती हुई बोली, "अच्छा, एक बात बताओगे? थी तो मैं तुम्हारी ब्याहता ही, मगर बिरादरी के दूसरे मर्दों का सा रवैया तुमने कभी नहीं दिखाया? तुम चाहते, तो क्या कमला पहलवान से और क्या अमोलकचन्द ठेकेदार से, हज़ार-पांच सौ की रकम तुम्हें मिल ही जाती? और नहीं तो, एक-दो रिक्शे ही खरीद लेते? किराये पर उठ जाते।...और जो तुमने वो नसीहत कुछ ही देर पहले हमें दी थी कि औरत को मर्द का जिस्म ही नहीं, जी भी देखना चाहिए—मानती हैं हम कि गफलतें हमसे हुई हैं।...मगर जहां तक औरत की आंख के देखने का वास्ता है, बसंता—गरचे अस्सी साल के बूढ़े के जी में सोला बरस की लौंडियों के लिए बेइंतिहा मुहब्बत हो, तो लौंडिया जी देख-देखकर जवानी वैसे ही न काटेगी, जैसे घी की हांडी के सामने करके कोई अपनी रोटियां चुपड़ी करे?"

रामकली हंसी, तो वह फिर खिसियाया। बोला, "बातों में तुझसे मैं

पार नहीं पाऊंगा, रामकली ! ...लेकिन इतना जरूर कहूंगा, जब लौंडियों की सी शक्ल छूटने लगे, तो लौंडियों की सी अक्ल को भी छोड़ देना चाहिए। खैर ये सच है कि सूरत तो भगवान ने हमें दी नहीं, रामकली !" बसंतलाल के होंठों पर मद्धिम-सी मुस्कराहट फैल गई, "ले-देके जो सीरत नाम की चीज़ बाप-दादों के दिए हुए खून में कहीं वक्त-जरूरत को बाकी रह गई है, इसे हज़ार-पांच सौ में बेच डालने जितना बेगैरत अभी हुआ नहीं।...और फिर तेरे नाम का पैसा लेगा तो मेरे लिए छुटकी श्यामकली की कीमत लेने जितना हराम है, रामकली ! कमला पहलवान या अमोलकचन्द ठेकेदार के सामने मेरी औकात कितनी है, मुझे भी पता है, मगर कभी उनके हाथ तेरे लिए तंग होने लगें, तो...खैर, अब इस तरह की बड़बोली हांकने में कुछ रखा नहीं, रामकली ! मुझे तो सिर्फ इतना ही कहना है कि हाथों से उड़ चुके तोते के पीछे खाली पिंजरा लिए-लिए घूमने में मुझे कोई तुक दिखी नहीं। मैं तेरी नफरत से बचना चाहता था।...और जब तू मेरे यों बुलाने पर, चन्द घड़ियों को ही सही, मेरे साथ चली आती है—मुझे लगता है, मेरा सब अकारथ नहीं गया। और रह गया उम्र के फर्क का सवाल—हम गरीबों में चन्द साल बड़ा खसम बाप दिखने लगता है और हमउमर घरवाली चाची-ताई।"

अपने स्वभाव के विपरीत रामकली चुपचाप सुनते रहने की सी मुद्रा में दिखी, तो वह कहता गया, "यों सचाई इस बात में है कि तुम जब इतने पास होती हो, तो मैं सारे फासले भूल-सा जाता हूं। भूल जाता हूं कि अब तुम परायी अमानत हो चुकी...मैंने खुद ही महसूस कर लिया कि मेरा ढलता हुआ जिस्म तुझे बांध नहीं सकता। तेरे बड़े घरों की बहू-बेटियों के से शौक पूरे कर सकने की ताब मेरी कमाई में नहीं थी। जर से जोरू पर काबू रखने की हस्ती न थी हमारी—होती भी, तो हम यही कहते कि बसंता, जर-जमीन के लालच में पड़ी औरत को जोरू मान के चलना अक्लमन्दी नहीं। हां, तू बुरा न माने, तो इतना जरूर कहेंगे कि मां की नज़र से तूने अगर देखा होता, तो बर्दाश्त ना की जा सके, इतनी गई-बीती तो हमारी घर-गिरस्थी थी नहीं ?"

"बीती हुई को लग्गी लगाकर लौटाने की कोशिश मत करो, बसंता ! और अब तो अमोलकचन्द ठेकेदार ने, खुद मेरी ही कसम खाकर, वादा किया है कि आते फागुन में मुझसे शादी कर लेगा। उसकी पहली वाली जौनपुर जो रहती थी, हैजे में मर गई। यों भी ठेकेदार यही कहता था कि शहर लाने

लायक थी नहीं।...और कमला पहलवान की घरवाली तो तुमने खुद ही देख रखी है, कैसी चुड़ैल-सी तो थी।" अपनी बात कहते-कहते, रामकली की आवाज़ में फिर अहंकार तैर आया था।

बस, यह अहंकार ही तो है, जिसमें रामकली का चेहरा सर्पिणी की त्वचा-सा हो आता है।

वसंतलाल को याद आया कि पिछली बार के आने में जब रामकली घुटनों तक खुलकर बैठी हुई थी, तो धीमे से उसकी पिण्डलियों पर अपनी अंगुलियां फिराने से वह अपने को रोक नहीं पाया था और रामकली ने उस समय तो सिर्फ अपने कपड़े ठीक कर लिए थे, मगर बाद में जब गुस्सा हो गई, तो यह कहने से चूकी नहीं थी कि 'अब थूके हुए को फिर से क्यों चाटना चाहते हो, वसंता? पहले तो बहुत कहते थे कि 'जा रामकली, तुझे मैंने जूजे निकल आए अण्डे की खोल मान के त्याग दिया। अब अपने बच्चों से जी बहला लूंगा।' मगर इतना तो कोई आंखों का अंधा भी जानता ही होगा कि बच्चे जी तो बहला सकते हैं, मगर जिस्म को बहलाना उनके बस का नहीं।'

हालांकि, अपनी बात समाप्त करके, रामकली हंसी थी, लेकिन वसंतलाल पूरी तरह हतप्रभ हो गया।

रिक्शा कचहरी के समीप पहुंच चुका था। रुकवाकर, वसंतलाल नीचे उतर, पान की दुकान की तरफ बढ़ गया।

रामकली कुछ क्षण तो चुप रही, फिर रिक्शे के हत्थे को ठीक करते हुए, भूरे से बोली, "क्यों रे, बड़का स्कूल जाता है?"

"दूसरी में गया है।"

"छुटकी...क्या नाम है उसका श्यामकली?"

"वह कभी फूलो ताई के साथ रहती है, कभी इस्कूल चली जाती है। जितनी देर वसंता बाहर रहते हैं, हमारी भौजाई भी खबर लेती रहती है, तुम्हारी छुटकी तो बड़ी चंट है। तितली की ज्यों उड़ती फिरती है।"

"हूं," कहते हुए रामकली को लगा, इस तरह की जिज्ञासा व्यक्त करना अब उसके लिए कितना निरर्थक हो चुका है। कहीं भीतर से उसे आत्मग्लानि महसूस होती तो है, मगर वसंता के साथ एक पत्नी की तरह सिमटकर रहना,

वसंता की तंगदस्ती और बदसूरती को साथ-साथ बर्दाश्त करना उसके लिए न सम्भव हुआ, न हो पाएगा। आज की जितनी समझ होती, तो शायद, रामकली वसंता से शादी करने से साफ ना कर जाती और आज अपने-आपसे यों लड़ना नहीं पड़ता।

योंही पूछ लिया, "क्यों भूरे, हरप्यारी—तुम्हारी भौजाई—वसंता के घर आती-जाती रहती है ना? कुछ बच्चों की भी देख-भाल करती होगी? हम तो, भैया, बच्चों की खातिर जीते जी के मरे हो चुके"

वसंतलाल को लौटता देखकर, रामकली ने चुपके से अपनी गीली हो आई आंखों को पोंछ लिया। रामकली को पान देने के बाद, वह भी रिक्शे पर बैठ गया, "भूरे, जरा मछली मार्किट की तरफ से ले। थोड़ा-सा मीट लेते चलें। क्यों रामकली, तुझे जल्दी तो नहीं? घण्टे भर में बन जाएगा। आज अब तू खाकर ही लौटना। क्यों?

"अच्छा, ऐसा करना। जल्दी बना लेना। मानसरोवर में 'राम भक्त हनुमान' लगी है। साढ़े नौ वाले में चलेंगे। बच्चों को भी दिखला देंगे।"

"बच्चे तो इससे पहले सो जाएंगे, रामकली! बड़े सुलक्कड़ हैं दोनों। खासतौर पर श्यामकली। वह तो नींद में भी तुझी पर गई है। मीट खाने का भी बड़ा शौक है।"

"अच्छा, उनको फूलो ताई के पास छोड़ देना। फिर हम लोग 'रूपबानी' में 'खिलौना' देखने चलेंगे, मगर हम फिर वहीं से कल्यानी को चली जाएगी—तुम्हारे साथ ममफोर्डगंज वापस नहीं लौटेंगी।" कहते हुए, रामकली के होंठों पर एक शरारत-भरी मुस्कराहट छा गई, "अभी-अभी भूरे बता रहा था कि बच्चों की देख-रेख हरप्यारी भी कर लेती है? सिर्फ बच्चों को ही सम्भालती है या तुम्हें भी?"

वसंतलाल उसके व्यंग्य से फिर हतप्रभ हो गया। कोशिश करने पर भी कोई ऐसी बात उसे सूझ नहीं पाई, जिससे वह रामकली के होंठों पर फैली मुस्कराहट को पोंछ सकता। मन ही मन वह सहम भी गया कि कहीं रामकली का मजाक भूरे को बुरा न लगे। वह अपने असमंजस से उबरता कि तब तक में रिक्शा घर के काफी नजदीक पहुंच गया और उसने सिर्फ चुप्पी साध लेना ही ठीक समझा।

६

रामकली से अचानक भेंट हो जाने से लेकर, कोठरी के सामने रिक्शे के आ लगने तक का सारा समय अब बीत चुका था। भूरे अभी भी बड़े उत्साह से रिक्शे की घण्टी बजाए चला जा रहा था, "लगता है, दोनों मादर··· अवारागर्दी करने निकले गए। ये श्यामा तो, हद दरजे की खिलण्डरी निकल आई। जाने कौन-कौन खेल खेलती रहती है। अच्छा हुआ जो इस बिल्ली को स्कूल में डाल दिए हैं बसंता। मिस रैनसम भैनजी के नर्सरी स्कूल में तो तीसरा लगते में ले लेती हैं। रतना के स्कूल से लौटने तक मार अनाथों जैसी भटकती रहती। फूलो ताई भला कहां तक देखती। हरप्यारी भाभी से तो कहती हैं बदमाशिन कि 'हमें तुम चुड़ैल लगती हो।'···बहुत मादर···"

रामकली को भूरे का बच्चों को माँ की गाली से सम्बोधित करना अच्छा नहीं लगा और उसकी त्योरी चढ़ गई; लेकिन जब तक में रामकली गुस्से में कुछ कहती, भूरे के इन आखिरी वाक्यों ने उसे गहरी खिन्नता में धकेल दिया, "शक्ल-सूरत में ऐसी निकल रही है जैसे रानी कोई मेम साहब की जनी हो। नाचने-गाने की बड़ी शौकीन है। कटी फ्राक नहीं पहनेंगी। बिलकुल तुम पर गई है रामो भाभी !···लेकिन हम यों फिकराते हैं कि कल को दूसरों के घर का चौका-बरतन करके पेट भरना पड़ा, तो···"

वह फिर इसी सोच में डूब गई कि आखिर क्यों वह यहां चली आई है ? खास तौर पर ऐसे वक्त में, जबकि अगले ही महीने वह अमोलकचंद की व्याहता होने की निश्चिंतता जुटा लेना चाहती है। और चाहती है कि एक अन्तराल के बाद अब फिर से संतान की जो छाया-सी मंडराने लगी है उसके सारे अस्तित्व में, हालांकि अभी तो बिलकुल शुरूआत-सी ही है—अपनी इस नियति में पूरी तरह डूब जाए। यह अमोलक वाली संतान हो जाएगी, तो शायद, फिर यह जो इन पहले घर के बच्चों की आंत पकड़कर खींचने वाली तृष्णा कभी-कभी जाग उठती है, खुद ही समाप्त हो जाएगी। और तब इनके भविष्य की चिंता से भी वास्ता नहीं रह जाएगा। कितना विचित्र लगता है यह दूसरे के घर बैठकर, पहले व्याहते के बच्चों के भविष्य से लगाव रखना !

भूरे की बातों और घर का सामना करते रामकली इतने विषाद में हो गई कि आधे रास्ते में होती, तो शायद, रिक्शा रुकवा चुकी होती। वह न

आ, तू इधर चली आ। कोई गर्मी के दिन तो है नहीं। यहीं बैठकर बातें करेंगे।

रामकली से वार्तालाप करने में अक्सर आहत और अपमानित-सा हो जाने पर भी, उसके साथ में बीतने वाले समय के आस्वाद को बसंता अपनी स्मृतियों की गहरी रेखाओं में पारे की तरह चमकता हुआ-सा पाता है। सचमुच कितना विचित्र लग रहा है रामकली का इस घर में आ जाना, जिसमें नौ-दस साल लगातार रही, तो भी लगता रहा है, जैसे फासले पर है।...और जब कमला पहलवान के साथ तिलियरगंज चली गई—अब कल्याणी देवी में है—लेकिन आई है, तो ऐसा लग रहा है, जैसे पचासों कोस का सफर करके यहां तक पहुंची हो और सारा फासला खत्म हो चुका हो।

बाहर से भीतर आते ही चारपाई रामकली ने ठीक से बिछा ली थी। रामकली अपने-आपको बटोरती-सी दीख रही थी। बसंतलाल ने देखा और इतमीनान से बैठ गया। बीड़ी सुलगा ली। रामकली ऐसे चीजों को आंखों से इधर-उधर सहेज रही थी, जैसे अपने लिए जगह बना रही हो। बीड़ी फूंकते हुए, बसंतलाल उसे गौर से देखता रहा और उसने अनुभव किया कि रामकली इन पिछले डेढ़ वर्षों में सचमुच ज़्यादा खिल आई है। वह बीड़ी फूंकता रहा, इसी बीच रामकली उठी और फर्श पर झाड़ू देने लगी। बुहारते में आगे-पीछे सरकती रामकली के भारी नितम्बों को देखकर, उसे किसी अजनबी औरत को देखते हुए होने का सा रोमांच अनुभव हुआ और अचानक ही अपना हाथ उसकी कमर पर के खुले हुए हिस्से पर रख दिया।

रामकली ऐसे पलटी, जैसे बसंतलाल ने न छुआ हो, किसी आवारागर्द ने छू लिया हो। वह तनकर, सामने मुंह करके खड़ी हुई, तो बसंतलाल हकबका गया। उसको लगा, वर्षों तक साथ रहने वाली इस औरत में यह ललकारता हुआ-सा मोहक सौन्दर्य तो उसने कभी देखा ही नहीं था। बच्चों को दूध पिलाते में रामकली की ओर वह अक्सर ताकता जरूर रहा था, लेकिन ऐसी आंखों पर छा जाने वाली रामकली से उसका वास्ता कभी पड़ा नहीं। इस घर से बाहर जाने के बाद रामकली में सचमुच बड़े घरों की सी बहुओं का रूप निखर आया है। वैसा ही दबंगपना भी।

आंखें तरेरकर देखते-देखते ही, रामकली एकाएक हंस पड़ी। बोली, "वह जो कहा है, बसंता, कि चोर चोरी से भले जाए, हेराफेरी से नहीं जाता, ठीक ही कहा है ना? अच्छा, देखो, ये सब अब हमें अच्छा नहीं लगता।"

अपना आखिरी वाक्य रामकली ने जिस तरह कहा, उससे सिर्फ इतनी ही ध्वनि निकलनी चाहिए थी कि अब दोनों के बीच वह पुराना संबंध नहीं रहा।…लेकिन वसंतलाल को इसमें से अपने उम्रदार व बदशक्ल होने का अहसास ज्यादा हो आया और उसने अपने-आपको अपमानित अनुभव किया। उसने ज़ोरों से बीड़ी का कश खींचा। मन ही मन कुछ इरादा-सा किया और उसे खुद ही लगा कि उसके समूचे अस्तित्व में कुछ बिजली की तरह चमकता हुआ-सा हवा में विलीन हो गया है।

७

कमरे को अपनी पहुंच-भर में बुहारने के बाद, रामकली चारपाई पर बैठ गई। वसंतलाल को लगता रहा कि उसके कान आज कुछ अतिरिक्त रूप से चैतन्य हो आए हैं, जैसे रामकली ने कमरा न बुहारकर, उसके कानों की मैल साफ कर दी हो। उसे याद आया कि कहने पर, रामकली झाड़ू की सींक में रुई लपेटकर उसके कानों की सफाई करती थी, लेकिन वितृष्णा से भरती हुई-सी।

वसंतलाल को लगा, रामकली इस वक्त उसके समूचे अस्तित्व पर पालथी मारे बैठी हुई है।

वह अपने-आपमें ही डूब-उतरा रहा था कि तभी एकाएक बाहर से बच्चों का बोलना सुनाई पड़ा। वसंतलाल उत्साह से भर गया, "तेरे बच्चे आ गए दीखते हैं, रामकली!"

रामकली को लगा, कानों में चिड़ियों के झुण्ड के तेज़ी से गुज़र जाने का सा शोर भर गया है। वह तेज़ी से पलटी और चारपाई पर रखी पोटली में से बनियानें निकाल ली। बायें हाथ में बिस्कुटों के पैकेट और टाफियों की पुड़िया को उसने ऐसे पकड़ लिया, जैसे आत्मरक्षा के साधन जुटा रही हो।

बच्चे बिलकुल पास पहुंच गए और उन्होंने रामकली को देखा। उनके चेहरे ऐसे हो आए, जैसे वो दोनों इस घर में पहली-पहली बार आए हों। अजनबीपन से भरे हुए उनके चेहरे देखकर, रामकली को एक दहशत-सी हुई। समय तो रुकता नहीं है। ये सयाने हो गए किसी दिन और तब भी किसी ने एकाएक परिचय करवा दिया कि—'रामकली, ये तेरे बच्चे…'

जो कुछ कभी भविष्य में जाकर उस पर बीतता, रामकली को लगा, इन्हीं

कुछ क्षणों में बीत गया है। बड़े रामरतन ने जिस तेज़ी से उसे पहचान लिया और अपने अजनबीपन में से उबर आने के बाद भी सिर्फ ताकता ही रहा, रामकली जड़ से हिल गई और उसका गला रुंध गया। कमरे में भरे हलके-से अंधेरे में उसे बच्चों की आंखें बिल्ली की आंखों की तरह चमकती लग रही थीं।

अपने मन को समझाने की वह कोशिश करना चाहती थी कि जब यहां तक आई है, तो इस दारुण स्थिति से रूबरू तो होना ही पड़ेगा—लेकिन तत्काल उसे इसके अलावा कुछ सूझा नहीं कि ढेर सारे बिस्कुट और टाफियां उन दोनों के हाथ में पकड़ा दे और इस बात का इंतजार करे कि बच्चे दुबारा कहीं बाहर निकल जाएं।

बसंतलाल ने स्थिति के नाजुकपन को भांप लिया था। फर्श पर से उठते हुए, उसने दोनों बच्चों को अपने घेरे में कर लिया और बोला, "जाओ, अभी तुम लोग बाहर खेलो। अम्मा तुम लोगों के लिए गोश्त बना लेंगी, तब चले आना।"

श्यामकली, इस वक्त, चटख हरे रंग की फ्राक में थी और बहुत सुंदर दीख रही थी। रतन काफी-कुछ बसंतलाल पर गया है, अच्छे स्वास्थ्य के बावजूद कुछ दबे-दबे रंग का लगता है।

बाहर थोड़े-से फासले पर फूलो ताई और पीपलवाली मौसी किसीसे बतिया रही थीं। दोनों बच्चे लगभग दौड़ते हुए-से उनकी तरफ निकल गए। बसंतलाल कमरे में वापस लौट आया।

रामकली फिर चारपाई पर बैठ गई, लेकिन आंखें उसकी बाहर की ओर ही लगी रहीं।

उसने लगभग अनुमान से ही यह जान लिया कि फूलो ताई और पीपलवाली मौसी रानी चींटियों की तरह बतिया रही हैं और दूसरी औरतें उनके इर्द-गिर्द इकट्ठी होती जाती हैं। दूसरे के घर बैठ चुकी औरत का अपने ब्याहते के घर आना बस्ती की औरतों को रोमांचक लगे, यह बिलकुल स्वाभाविक है। देर तक औरतें बाहर-बाहर मंडराती रहीं, शायद पिछली बार के कलह की स्मृति उन्हें संकोच में डाल रही हो—रामकली ने सोचा और तय किया कि यों ही चुपचाप कमरे में पड़ी रहे।...लेकिन ज़्यादा देर तक वह उनकी उपस्थिति के दबाव को झेल नहीं पाई और अपने-आपको हरबों से लैस करती हुई-सी बाहर, औरतों के बीच निकल गई।

रामकली जितनी देर बाहर औरतों के बीच रही, उतने में बसंतलाल ने चूल्हे पर गोश्त चढ़ाने की तैयारी कर ली। भूरे इस बीच मसाले पीस गया था और प्याज भी काट गया था। दोनों बच्चे बाहर निकल गए तो बसंतलाल सिगड़ी के पास बैठ गया। रामकली ने औरतों के बीच से वापस आते ही लैम्प जला लिया था और रोशनी में कमरा पहले की अपेक्षा ज्यादा आत्मीय लगने लगा था।

रामकली अब फिर चारपाई पर बैठ गई थी। अपने पुराने अभ्यास से कमरे के बिखराव को समेट चुकने के बाद, जैसे वह स्वयं भी अपने-आप में सिमट आई थी और उसके चेहरे पर एक स्याहपन-सा उभर आया था, जैसे वह इस जगह से अब जल्दी से जल्दी छुटकारा पाना चाहती हो।

बसंतलाल ने देखा, बिरादरी वालियों ने न जाने क्या-क्या बातें की थी। लगता था, रामकली के चेहरे पर की चमक को मुंह पर के पसीने की तरह अपनी धोतियों की किनारियों से पोंछती ले गई है। खासतौर पर पीपल वालों की बड़ी बहू बहुत तीखा बोलती है। हो सकता है, यही कह गई हो कि रामकली, दो बच्चों की महतारी का यों आवारा घूमना शोभा देता नहीं।'

रामकली उसे वापस लौट आने या अंदर बैठे रह जाने के द्वन्द्व में उलझी हुई-सी लगी, तो उसने आगे बढ़कर, रामकली का हाथ आत्मीयता के साथ पकड़ते हुए, आग्रहपूर्वक कहा, "लगता है, बाहर औरत लोगों ने तुमसे कुछ कहा-सुना है। इन हरामखोरियों को किसी के भले-बुरे से कुछ लेना नहीं, इन्हें तो अपनी खाज मिटानी रहती है। तू तो बचपन से इन्हीं लोगों के बीच रही है। इन हरामज़ादियों का सुभाव तुझसे थोड़े छिपा है।"

रामकली कुछ खिंचती हुई-सी, नीचे उतर आई और चटाई पर बैठते हुए बोली, "तुम अगर जो ये सोचते हो कि इस तरह घेर-घारकर मुझे अपने इस बाड़े में फिर से फंसा लोगे, तो बड़ी गफलत में हो। आगे से तो अब मैं तुम्हारे बुलाने पर भी नहीं आऊंगी। भूरे से कह दो, मुझे वहीं छोड़ आए, जहां पर से तुम जबर्दस्ती ले आए थे।"

कमरे में डिबरी इस तरह जल रही थी, लगता था, रामकली उठी नहीं कि अंधेरा गाढ़ा हो जाएगा। रामकली की धीमी-धीमी सिसकारियां उस नीम-रोशनी में आकार ग्रहण करती हुई-सी लग रही थीं।

बसंतलाल ने अपना हाथ उसके कंधे पर रखा, तो रामकली ने झिटक दिया, "मैं चली आई थी कि चलो, जिसने बाप के न रहने पर संभाला,

उसका भरम क्यों तोड़ूं—और यहां तुमने पांव रखते ही दही की हाड़ी की तरह पीपल वालों की मुसटंडी को मेरे सामने कर दिया। चोट्टी कहती क्या है कि 'रामकली, तैंने तो दोनों बच्चे पड़वे के बाद उतरने वाली थैली की तरीं अलग गेर दिए।'...अरे, गेर दिए तो मैंने अपने दस महीनों के सेंते गेरे या कि कोई तेरी टाँगों के सेते हुए? और दूसरे ही पल यों बिलार के से दीदे घुमाने लगी कि 'रामकली, तेरे साड़ी-बिलाउज तो कोठीवालियों के से हैं। रामकली, ये सोने की जंजीर कित्ते की बिठाई है?'...औरत जात का सुख तो औरत जात के गले में तिरछी हड्डी की ज्यों फँस जाता है, उतरता नहीं नीचे। चोट्टी मेरी ही उमर की तो है, मगर तीन ठो पड़वे क्या जने हैं, चुड़ैल की चाटी हुई-सी लगती है। मेरे तन पर नजर गड़ा के क्या कहती है कि 'रामकली, हमने तो ऐसी चोली आज तक ना पहनी।' ना पहनी, तो रामकली की जूती से। भुंजाने भी वो जाता है, बन्नो, जिसके घर चने के दाने हों।"

आवेश में बोलते-बोलते, कब रामकली ने फफक-फफककर रोना शुरू किया और फिर कब एकाएक दर्प से उसका चेहरा तमतमा आया और वह पुराने अंदाज में लौट आई—वसंतलाल ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सका। बसंतलाल डर रहा था कि कहीं इस बार भी यही न हो कि रामकली चली जाए, तब कहीं मुझे कि रामकली से यह बात नहीं कही, वह बात नहीं कही।

"मुझे तू गलत समझ रही है, रामकली! जाल-फरेब से खड़ी की गई गिरस्थी का मुझे कोई लोभ नहीं। होता, तो बरसों तक की घरवाली को अपने घर से बेटियों की तरह न चले जाने देता। तू खुद फूलो ताई से पूछकर देख लेना, अपनी फाफामऊ वाली विधवा भान्जी के लिए पचास बार कह चुकी है कि 'बसन्ता, मर्दों से ही संभाले-पोसे जा सकते होते, तो दो दूध वाले थन उन्हें भी लगा देने में विधाता के घर अकाल पड़ने वाला थोड़े न था?' मैं भी जानता हूं, महतारी का सा घोंसला बाप से नहीं बुना जाता, मगर अंदेशा तो यही रहता है कि जिसने जने न हों, उसको दूध भी नहीं फूटेगा।...और आंसू भी उसी औरत को फूटते हैं, जिसके दूध फूटा हो।"

रामकली अपने-आपमें ही थमी हुई-सी सुन रही थी। धोती का पल्लू उसने सिर पर इस तरह डाल लिया था, जैसे सिर्फ मेहमानदारी निभाने आई हो। उसके चेहरे और उसकी आंखों में जिस तरह बार-बार भावावेग

कौंध रहा था, स्पष्ट था कि वह निरंतर मानसिक असुविधा महसूस कर रही हो।

"जो- कुछ व्यवहार तुम हमसे किए हो, बसंता, हम खुद जानती हैं। रामकली जो घर एक बार छोड़ चुकी, उसमें पलटे उसकी जूती। तिस पर भी हम यहां आई हैं और तुम्हारी चहेतियों का नमक-मिर्च भी बर्दाश्त कर रही हूं, तो ये तुम्हारी भलमनसाहत का ही सिला दे रही हैं। ...मगर, बसंता अब यह हमारा आखिरी फेरा है।"

बसंतलाल ने देखा, रामकली फिर सुबकने लगी है। मन तो हुआ कि समीप जाकर, सान्त्वना दे, लेकिन सहमा रह गया कि कहीं और न बिफरे। वह रामकली की ओर अपनी पीठ तथा सामने वाली दीवार की तरफ मुंह किए कहता रहा, "करो तुम वही, जो तुम्हें भाता हो। हमारा जो मोह है, रामकली, वो खुदगर्जी का नहीं। ये तो तावेजिंदगी रहना है कि तू थी। यों हमने बहुत पहले ही जी यों बना लिया था कि कटी पतंग को तब लूटो जब उसके फटे का दर्द न हो। बच्चा पूछता है, महतारी कहां है, तो कह देता हूं, अपने बापू के पास। जैसे तुम लोग मेरे साथ रहते हो। कुछ बड़े हो जाएंगे, तो खुद ही जान लेंगे, तब की तब देखी जाएगी, यही सोचकर तसल्ली देता आया हूं। अभी कल की ही तो बात है, रतना कहने लगा, 'पीपल वाले ताऊ कहते हैं कि तुम्हारी महतारी ने दूसरा खसम कर लिया।'...अब तू यों जान कि कल रात कुछ तो मैंने ले ली थी और कुछ फूस के टोकरे में छिपाए हुए अण्डों जैसे दुःख-सुख ' बस, पीपल वाले दाताराम और मेरे बीच लठ बजते-बजते रह गया कि अगर दूसरा खसम कर लिया, तो मेरी जोरू ने कर लिया और उसकी मर्जी आएगी, वह दस खसम करेगी। तुम चोट्टे काहे खोखियाते हो।"

"तुम बच्चों से यों क्यों नहीं कह देते हो कि तुम लोगों की महतारी मर चुकी? अभी बाहर फूलो ताई के पास से दोनों को अपने पास बुलाने लगी, तो उस बुढ़िया की छाती और पीठ से दोनों यों चिपक गए, मुझे खुद ही ये लगा कि 'रामकली, इनके लिए अब तू रही नहीं।' बड़के ने भी जैसे पहचाना नहीं। और तुमने दाताराम से यों क्यों कह दिया कि रामकली दस खसम कर लेगी? तुमने मुझे क्या रंडी समझ लिया है?"

रामकली फफक-फफककर रोने लगी। बसन्तलाल उसे चुप कराने के लिए कोई उपाय सोचना ही चाहता था कि बाहर से भूरे की आवाज सुनाई दे

गई, "कहां हो, बड़े भैया, चूल्हे पर से जलन फूट रही है।"

वसन्तलाल गोश्त के पतीले में थोड़ा पानी डालने के बाद बाहर चला आया और भूरे के हाथों से माल्टे की बोतल और सेवचूरे की पुड़िया लेता हुआ बोला, "तनिक तू चूल्हे में बैठ। पानी इकट्ठे मत गेरना। तब तब थोड़ी-सी प्याज कतर के दे देना। तुम्हारे हिस्से की मैं बोतल में ही छोड़ दूंगा। हम लोग सिनेमा चले जाएं, तो तू फिर आराम से खा-पी लेना और फूलो ताई को खिला-पिला देना। हरप्यारी आती हो, तो कह देना, वह भी खा-पी ले और ज़रा चौका-बरतन देख ले।"

कमरे में वापस लौटकर, वसन्तलाल ने बिना पल्ले की अलमारी में रखे हुए, दो बड़े-बड़े कांच के गिलास निकाल लिए। नमकीन की पुड़िया खोलता हुआ बोला, "महीने में एक दिन लेता हूं। इस बार दुबारा हो गई है। कल तो मुफ्त की मिल गई थी। कटरे वाले बैंक में सेविंग एकाउन्ट खोल रखा है। बच्चों को चलती सांस तक पढ़ा देना चाहता हूं।…अरे भाई भूरे, ज़रा एक लोटे में पानी रखते जाना।…राय साहब तो कहते हैं कि इतना पढ़ा-लिखा दे, कम्पोजिंग सीख ले। अपने ही प्रैस में लगा देंगे, मगर हाथ में तो भगवान के ही है, मैं बड़के को तो बी०ए० कराने की ठान चुका हूं। दर्जे दो तक मैं खुद पढ़ा था, बड़के अभी से दूसरी में हो गया है। अभी शरमा गया लगता है साला, फिर कभी आएगी तू तो उसके मुंह से अंग्रेज़ी शायरी सुनवाऊंगा तुझे। कभी-कभी तो हरामी का पिल्ला 'गुड मौनिंग डैडी!' कहता है।"

वसंतलाल को खुद ही लगा, उसकी आवाज़ दर्प से भारी हो गई है। कुछ देर वह चुप ही रह गया। रामकली बच्चों के ज़िक्र से उबरने की कोशिश करती लगी, तो वसंतलाल ने फिर कहना शुरू किया, "एक ही ललक मन में है, रामकली, कि बीतता समय तो बड़ों-बड़ों से पीछे नहीं खिंचता, तेरी-मेरी बिसात क्या है! दस-पांच बरस और समझ ले, मगर जब तेरे सिर पर भी कपास फूटने लगेगी, तो भले ही तब तक तेरे दूसरों से भी औलाद हो जाए, ब्याहते के बोये हुओं को पछहां में झूमते पेड़ों की तरह आंखों से देखने पर एक हूक तेरे कलेजे में भी उठेगी ही।…ले, तेरे में आधा पानी कर दिया है। मैं तो सूखी ही लूंगा। ये नमकीन भी ले ले। बिरादरी वालियों का वास्ता क्यों देती है, रामकली? उनको तो खजुहा कुत्तों की तरह जीभ से घाव चाटने की आदत पड़ चुकी! मगर तेरे भीतर-भीतर गरी का सा पानी भरा है, यह मैं जानता हूं, रामकली!"

रामकली ने किंचित् चकितपने में वसंतलाल की ओर देखा। उसके चेहरे पर कुछ ऐसा भाव था, जैसे सारी दुनिया उसके लिए सिर्फ रामकली में समाई हुई हो। अपने प्रति इस तरह की एकाग्रता और अनुराग का साक्षात्कार रामकली को अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है। न कमला पहलवान के यहां—न अमोलकचंद ठेकेदार के। वो दोनों पशुओं की सी आक्रामकता के साथ आसक्त और उसी तरह उदासीन होते रहे हैं। इस कोटि की विह्वलता और कृतकृत्यता उनमें कहां ?

रामकली ने अपने को हवा के से दबाव में महसूस किया और चुपचाप आगे हाथ बढ़ा दिया वसन्तलाल के हाथ से माल्टे का गिलास लेने के लिए। अपनी काफी ऊपर तक बढ़ आई चूड़ियों के एकाएक नीचे उतर आने की खनखनाहट उसे स्वयं ही अच्छी लगी। अपने-आपमें वापस लौटती-सी, थोड़ा-सा हंसकर बोली, "कहीं तुम मुझे ज्यादा नशे में मत कर देना, बसंता !"

रामकली जब अपनी विक्षुब्धता में से उबरकर यों अचानक शरारत-भरी हंसी हंसती है—वसन्तलाल के भीतर कहीं कोई गहरी स्याह लकीर खींचती चली जाती है। कभी वह उसके साथ पत्नी की हैसियत से रह चुकी है, उसके दो बच्चों की मां बन चुकी है…लगता है, जैसे वह सब-कुछ किसी स्वप्न में घटित हुआ था।

कुछ देर वसंतलाल चुपचाप नमकीन टूंगता रहा, जैसे किसी भूले हुए स्वप्न को स्मरण करने की कोशिश कर रहा हो और फिर लगभग आधा गिलास माल्टा एक सांस में चढ़ा गया।

रामकली भी अपना गिलास खाली कर चुकी थी।

वसन्तलाल ने बोतल का सिरा गिलास से लगाया ही था कि रामकली ने रोक दिया, "बस्स !"

"थोड़ी-सी साथ देने को तो ले ले ? इस वक्त तो हम दोनों दोस्तों की तरह आमने-सामने बैठे हुए हैं। ऐसा वक्त बड़े भाग से मिलता है, रामकली !"

"तनिक-सी ही डालना।…बगैर पानी की ही रहने देना। पानी या सोडा मिलाकर तो विलायती ही अच्छी लगती है। देसी तो ज्यादा पानी मेरा नहीं, बदजायका हो जाती है।"

"तू तो, रामकली, बड़ी जानकार हो गई रे ! हमारे यहां रहते तो तुमे लत थी नहीं ! यों मैं जानता होता, रामकली, कि तुझे इसमें मजा आएगा, तो

मने थोड़े करता ! हमने तो कई वार कहा भी होगा ?"

"हमें तो कमला पहलवान के यहां से कुछ आदत-सी पड़ गई। शुरू में तो गला छीलती निकल जाती थी और मार के करने को जी हो आता था। अमोलकचन्द ठेकेदार तो हमेशा विलायती ही लाता है। न जाने क्यों अव भी ज़िन्दगी में एक वेचैनी-सी ही रहती है। तुम यों मत सोच लेना, दारू के नशे में वक रही हूं, मगर जव तुम ज्यादा चढा लेते थे ना—तुम्हारे साथ का एक चारपाई का सोना मुझसे वर्दाश्त नहीं हो पाता था। मेले-ठेले में भी जाती थी, तो लगता था, जैसे चाचा-ताऊ के साथ घूम-फिर रही हूं। हकीकत तो यही है, वसंता, तुम्हारे साथ का जीना मैं पचा नहीं पाई।" रामकली के स्वर में हलकी-सी लड़खड़ाहट आने लगी थी, "मुझे इससे—इस वात से कोई इन्कार नहीं, तुमने शायद, मेरी औकात से ज्यादा मुझे चाहा होगा—शायद, अव भी चाहते ही होगे। मेरे नाज-नखरे जितने तुमने वर्दाश्त किए, कोई दूसरा कर नहीं पाएगा, ये भी हम जानती हैं।···मगर तालाव में पसरी हुई भैंस का सा जीना हमसे न तो निभा, न निभेगा।···अव तुम भी दूसरी शादी कर लो, इसी में हम दोनों की भलाई है, वसंता ! चाहो तो हरप्यारी को ही विठा लो। उसे भी आसरा हो जाएगा।"

रामकली ने अपनी वात सहज भाव से कही थी, लेकिन उसे लगा, जैसे यह जता रही हो कि वसंतलाल की पात्रता तो हरप्यारी जैसी उम्रदार औरत की ही है। रामकली के द्वारा अपने उम्रदार होने का अहसास कराया जाना उसे अप्रिय ही लगता है, लेकिन जव तक वसंतलाल कहने को कुछ इकट्ठा कर पाता, तव तक में रामकली वहुत भावुक हो आई, "कमी मेरे को कोई नहीं है। जी चाहा खाती-पहनती हूं, मगर जाने क्यों लगता है कभी-कभी कि रामकली, यह तो वाढ़ का वहना है, किनारे का लगना नहीं। यों तो अमोलकचंद ठेकेदार अपनी जौनपुर वाली वीवी के मरने के इन्तजार में ही दिखता था, मगर कभी-कभी उसकी नज़र में भी सच्चाई की कमी दीखती है। वुरा मत मानना, दीखने में तो तू वदसूरत ही कहा जाएगा···मगर तेरी आंखों में एक सच्चाई है···एक ईमानदारी है···गैरत है···" अपनी लड़खड़ाती हुई आवाज़ को माल्टे के गिलास में उगलती हुई-सी रामकली कुछ असन्तुलित हो आई थी, "वसन्ता, तूने मुझे ज़्यादा पिला दी है···"

"नहीं रे, इतनी तो हमारी विरादरी के लौंडे-वच्चे चढ़ा जाते हैं।" —कहते हुए, वसंता ने एक हाथ उसकी कमर में डालते हुए, उसे ठीक से

बिठाने की कोशिश की, "तू मेरे कुछ भी कहे का बुरा मत मानना, रामकली ! मगर इस साले कबाड़घर से बाहर निकलकर तू सचमुच बहुत जवान और खूबसूरत निकल आई है· तुझे छूने में किसी पराई औरत को छूने-जैसी हिर्स महसूस होती है—हां, तो तू कह रही थी, अमोलकचंद ठेकेदार भी कुछ पैंदी *का मजबूत नहीं दिखता ? देख, कहीं कमला पहलवान की तरह ही* वो भी गस्ता न दे जाए ?"

पहली बार लगा कि शराब की ऊष्मा में उसकी व्यक्तित्वहीनता क्षरित हुई है और एक तरह का दबंगपना मन में इकट्ठा हो रहा है। रामकली को झाड़ू लगाते देखते हुए जो एक अमूर्त-सा इरादा बसंतलाल को अपने भीतर महसूस हुआ था—लगा कि वह अंधेरे में ठीक आंखों के सामने खड़े जंगली पशु की तरह साकार हो आया है।

बसंतलाल अपनी इस कल्पना से नदी में डुबकी लगाते वक्त की सी मनःस्थिति में हो गया कि—कदाचित् रामकली ने एतराज न किया, तो यह उखड़ते मेले का सा साथ याद रखने को हो जाएगा। उसने साफ-साफ अनुभव किया कि रामकली का औरत होना उसके लिए इससे पहले कभी इतनी हवस की चीज बनी नहीं।

वह शायद, सोच में ही डूबी थी। रामकली के कुछ कहने तक, बसंतलाल धीमे से खिसककर, उसकी पीठ से टिक गया और उसे बांहों में भरने की कोशिश करने लगा, तो एक क्षण तो चुप रहने के बाद, रामकली एक तरफ खिसक गई। इस तरफ घूमकर, उसने अपना मुंह बसंतलाल के सामने कर *लिया, "खामखा को जी खराब मत करो अपना। मैं तो तेरे दारू मंगाने से* ही समझ गई थी, इरादा नेक नहीं। पहले भी तेरी यही आदत थी। "मैं लाख नशे में होऊं, बसंता ! मगर यों समझो कि जहां किसी पराये मर्द का हाथ लगा नहीं कि सारा नशा यों एक तरफ हो जाता है, जैसे कुत्ते को देखके बिल्ली अपने रोएं खड़े कर लेती है।"'मैं तो उस औरत को थू समझती हूं, जो अपना नेग नहीं निभा सके। जब तक तेरे घर में थी, कभी कहीं ऐसी-वैसी बात तूने देखी हो, तो बता तू ही ? देखी थी ? यों लगाने-बुझाने वालों को कहो, तो बेचारे हरगुन पंडित का नाम भी बहुतेरों ने लगाया, लेकिन हमसे कोई चाहे बच्चों की कसम ले ले।"

अपना वाक्य पूरा करते-करते रामकली ने महसूस किया, कहने में ज्यादा जोर नहीं रह गया है। एक क्षण को स्मृति में पहली-पहली बार का

मुंह-अंधेरे का हरगुन पंडित के साथ का गंगा-नहान को जाना उभर आया। रामकली भीतर ही भीतर इस बात को जानती है कि जब कमला पहलवान जैसे खूसट का परहेज नहीं निभा, तो हरगुन पंडित को ना कैसे करती। वो तो हरगुन पंडित ही जब तक बस्ती में रहा, पहल नहीं कर पाया और जब वह रामकली के ज़्यादा समीप आना चाहता था, तब तक में रामकली कमला पहलवान को पकड़ चुकी थी।

हां, ज़िंदगी के उस खामखा के जोखिम को पकड़ना ही तो कहा जाएगा, नहीं तो छूटने का इतना पश्चाताप क्यों होता, जितना उस समय ब्याहते की देहरी लांघने का नहीं हुआ।

कहीं बसन्तलाल उसके मन के अंधेरे में झांक तो नहीं रहा होगा ?

"हरगुन पंडित के साथ हमारी यों ही बाहर-बाहर की हंसी-ठट्टा ज़रूर था। गंगाजी नहाने या सनीमा एकाध बार उसके साथ चली गई थीं, ये तो तुमसे भी छिपा नहीं ना, बसंता ! आगे की जो कहो, सो कसम खा लें।"

बात समाप्त करते-करते, रामकली को लगा कि होठों पर से शराब लार की तरह नीचे चू गई है।

खिसियाया हुआ बसंतलाल सिर्फ 'ना-ना' की मुद्रा में सिर हिलाकर बोला, "कसम खाने की तुम्हें कौन ज़रूरत है, रामकली…"

"कमला पहलवान के हम रही होंगी कोई सात-आठ महीने से ज़्यादा ही। तब भी ये नहीं कि दूसरों पर नीयत रखी हो। बल्कि ये अमोलकचंद ठेकेदार तो वहीं आया-जाया करता था। अब तो अमोलकचंद पर बस है। इससे आगे तो मौत कर लेनी, मरद नहीं करना है। कहने को तो तू चाहे, हमें बेसवा भी कह सकता है। कह क्या सकता है, कहा ही है हज़ार बार।…खैर, गू हमने खाया है, तो बू भी बर्दाश्त करनी ही हैं, बसंता, ये हम खुद जानती हैं। यों भगवान जानते हैं, अपना नेग निभाने में कमी नहीं रखी। कमला पहलवान पर ही तोबा हो गई होती, तो आज ये दिन देखना न पड़ता।…लेकिन जैसी फजीहत तुमने हमारी की, उसमें हमारी आंखें ही फूट गई थीं। उस हादसे में हम देख ही न पाए कि वो ससुर तो सिर्फ गोश्तखोर है।…"

आवेश में रामकली का गला भरभरा आया था। आंखों में से गिरने को हो आए आंसुओं को, उसने धीमे से पोंछ लिया, "कभी-कभी सपने में बापू आता है। कमला पहलवान के साथ सोया देखकर, थूकता हुआ निकल गया था। वो सपना बिसरता नहीं है।…तेरी नियत में भी खोट दिख रहा है मुझे।

तू भूरे को बुलवाकर, मुझे वापस भिजवा दे। कहीं फिर पिछली बार की जंगी थुक्का-फजीती में न लौटना पड़े। कहीं तेरा इरादा यों न हो कि हाथ से निकली हुई की पूछ ही सही! जो होना था हो चुका, आइंदा अब हम ठेकेदार से चोरी नहीं करना चाहती हैं।"

रामकली का स्वर फिर थोड़ा-सा सख्त हो आया था।

बसतलाल तुरन्त बोला, "मेरा विश्वास कर, रामकली! तू सामने बैठी है, तो जी ललचा गया, मगर तेरी मर्जी के बिना तो, तू मेरी बहन, मैं तेरा भाई। यों ये बात तो तुझे शायद है, मैं पहले भी कह चुका—और तू लाख बुरा माने, आज फिर यही तेरे सामने-सामने कहना चाहता हूं कि रामकली, मैं अपनी नामर्दगी का नहीं, मुहब्बत का मारा हुआ इन्सान हूं।"

बसतलाल थोड़ा सभलकर बैठ गया। उसकी आवाज में आत्मगरिमा का सा तेवर उभर आया, "कांटों के बीच की जिंदगी में, आज तू विश्वास काहे करेगी, मगर मैंने तुझे फूल की ज्यों पाला-पोसा। ये कमला पहलवान और अमोलकचंद ठेकेदार साले हरामखोर तब कहां गए थे, जब तेरा बाप किसना दम तोड़ रहा था और कफन-काठ का जुगाड़ भी मैंने किया था, रामकली, मैंने! जिस बाप के घर में भूजी भाग न हो, मरते दम पर और पराये घर की तैयारी में बैठी बेटी हो—उसकी मुसीबत कैसी होगी, ये तुमने सोचा होता, रामकली, तो तुमसे कमला पहलवान या अमोलकचद के कटे पर पेशाब भी नहीं हो पाती, उनके घर जा बैठना तो दूर। 'तुम्हारे बाप किसना का दम नहीं निकलता था।'''जब मैंने यों वचन दिया कि 'किसना, परमात्मा को साक्षी करता हूं।' तो बुड्ढे ने यों दम तोड़ दिया, जैसे हाथों में लिया पानी छोड़ दिया हो। 'हां, तो, रामकली ये जो कह रहा था कि बसता नामर्दगी का मारा नहीं, झूठ नहीं कह रहा था। दूसरा कोई मर्द होता, तो तुझे बेसवा की जगह पर ही रखके बात करता'''और यों कहने को मैं मजबूर हूं कि मैं भी करता—अगरचे कि मैंने तुझको जो सिर्फ बीबी की जगे पर देखा होता, बेटी की नहीं।"

सामान्य स्थिति में, शायद, ये बातें—और इस तेवर में, बसतलाल कह नहीं पाता, लेकिन माल्टे के सुरूर ने जैसे उसे एक नैतिक शक्ति के आलोक से भर दिया था। इतना तो, खैर, इस वक्त भी याद है कि जब शराब के सुरूर में नहीं होता है, तो जाने क्यों रामकली से दब जाता है। दूसरों के घर बैठने के बाद भी रामकली जिस दबंगई के साथ बात करती है, उसमें छोटी बच्चियों

हठ झलकता है। खैर, यह तो तय है कि रामकली...
।
थोड़ा-सा अन्तराल देने पर, वसंतलाल को इस बात का अहसास हुआ कि
द, वह कुछ ज़्यादा सख्त बातें कह गया। हालांकि इस बीच, सिर को
ार के सहारे टिकाए हुए, रामकली सिर्फ सुनती ही रही थी—फिर भी
ंतलाल ने यह सावधानी बरतने की आवश्यकता अनुभव की कि रामकली
किसी तरह का विस्फोट होने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए।

वसंतलाल ने रामकली के घुटने पर रखे बायें हाथ को धीरे से अपने
हाथों में भर लिया और बोला, "आज मैं तुझे नाराज़ करके नहीं भेजना
चाहता, रामकली! सिर्फ इतना कह देना चाहता हूं कि यह घर तो ना रहते
का भी मेरे से पहले तेरा है। इस घर में तो अगर तू सारा संसार छानकर भी
वापस लौटेगी, तो भी मेरे से ज़्यादा हक अपना पाएगी। जाने की उतावली
मत दिखाना। आराम से खा-पीकर जाएगी। जाने को तो पहले भी जैसे तूने
चाहा, तू गई है। आज भी जैसे तू कहेगी, वैसे ही भेजूंगा। गोश्त पक चुका
होगा, मैं भूरे से रोटियां सेंक लेने को कहता हूं..."

"मैं सेंक देती, मगर तूने इतनी पिला दी कि रोटी पयेगी नहीं मुझसे..."

"अरे, नहीं रामकली! आज तो तू मेहमान है..."

"तेरी भलमनसाहत को तो मैं एड़ियों पर खड़ी होकर भी नहीं छू पाऊंगी,
वसंता! मगर अपने से मैं लाचार हूं। डर-सा, बस, एक यही मन में ज़रूर
समाया रहता है कि कहीं अमोलकचंद ठेकेदार ने भी मुकरने की कोशिश की
तो मर्दों का यह कमीनापना मुझसे बर्दाश्त हो नहीं पाएगा...मगर ये सब तो
फालतू बातें हैं। कुछ झोंक में तो नहीं आ गई हूं? अच्छा, ऐसा करना। अब
सिनेमा जाने को जी नहीं रहा। बदन टूटने लगा है। खाना खा लूं, तो भूरे से
कल्याणी देवी तक ही छुड़वा देना। वो अमोलकचंद ठेकेदार भी दिखने का
जितना सलोना है, गुस्से का उतना ही काला। कल कहीं यों ना कहे कि पहला
खसम तुझसे छूटता नहीं दिखता!"

इस बार रामकली फिर हंस दी, तो नशे के लड़खड़पन में अधडूबा-सा
वसंतलाल भी हंस पड़ा। हंसी थमी, तो बोतल आलमारी में सहेजता हुआ
चिल्लाया, "भूरे, गोश्त पक गया हो, तो आटा गुंथा पड़ा है। मोटी-पतली
जैसी भी बने, तू ही सेंक दे, यार! और घी चुपड़कर इकट्ठी कर लेना। बच्चे सोये
सुन, ज़रा एक मिनट को फूलो ताई के यहां चला जा।

हों, तो साथ लेता आ। बड़के को गोश्त बहुत पसन्द है। छुटकी तो पहले घिनाती थी। कहती थी, तुम बकरे की मां का गोश्त पकाते हो— छि-छि-छि... जहां तक है, वो तो सो भी चुकी होगी।"

रामकली पीछे खिसकती हुई, दीवार से पीठ टिकाकर बैठ गई। उसका स्वर एकाएक काफ़ी उदास हो आया, "छुटकी कितनी बड़ी-बड़ी बातें करने लगी..."

वसंतलाल भी धीरे-धीरे दीवार की ओर खिसक आया और बोला, "संग खा लेने में तुझे कोई एतराज तो नहीं रामकली ?"

रामकली ने 'ना' की मुद्रा में सिर हिलाया, और ऐसे थोड़ा अपने-आपको समेटकर बैठ गई, जैसे वसंतलाल को जगह दे रही है। माल्टा के प्रभाव में रामकली का चेहरा गुलाबी-सा हो आया था। उसके होंठ धीमे-धीमे कांपते लग रहे थे और आंखों में लौ भर गई महसूस हो रही थी। एक बार कटोरे में गोश्त परोसते भूरे की ओर देखकर, वसंतलाल रामकली के निकट खिसक आया और अपना दायां घुटना उसने रामकली की बाईं जांघ पर रख लिया। रामकली ने हलके से आंखें तरेरकर उसे घूरा तो सही, लेकिन बोली कुछ नहीं और न वसंतलाल का घुटना ही हाथ से ठेला। सिर्फ़ एक बार खुद ही गौर से अपने सुडौल स्तनों की ओर ऐसा देखा, जैसे पानी में परछाइँ देख रही हो और फिर पल्लू कर लिया।



खाना खा चुकने पर लगा कि सिर्फ़ आंखों में ही नहीं, समूचे अस्तित्व में आलस्य भर गया है। वसंतलाल ने अपनी ही जगह बैठे-बैठे एक बार खाली पड़ी चारपाई को देखा और फिर रामकली की ओर। रामकली दीवार से टिकी, सींक से गोश्त के दांतों में फंसे रेशे निकालने में व्यस्त थी, लेकिन उसके चेहरे पर यह बात साफ़ झलक रही थी कि वसंतलाल सिनेमा जाने, न जाने की बात अंतिम रूप से तय कर ले।

कुछ क्षणों तक द्विविधा में रहने के बाद अंततः वसंतलाल ने अत्यन्त आत्मीय शब्दों में कह दिया था, "रात का सिनेमा जाना, जहां तक मैं समझता हूं, ठीक नहीं रहेगा तुम्हारे हक में। भूरे, रामकली को कल्यानी छोड़ते आना। खा-पी के तुम भी थके होगे। कोई सनीमा की सवारी मिलेगी

अभी तो—कटरे तक की भी मिले, तो पकड़कर लौट आना।"

भूरे खा चुका था। कुल्ला करके, डकारते हुए बाहर निकल गया, "चलो आओ, भाभी! हम बाहर रिक्शा ठीक से लगा लें।"

रामकली उठने लगी, तो धीमी-सी लड़खड़ाहट में दीवार का सहारा लिए खड़ी रह गई। वसंतलाल ने धीमे से उसके बायें कंधे पर हाथ रख दिया, "चलो, चौक-कोतवाली या अतरसुइया गोल चौराहे तक तुम्हें छोड़ता आऊं। बच्चे फूलो ताई के करीब ही उड़क गए होंगे। हो सकता है, ताई ने जान-बूझकर सुला लिया हो कि तुम्हें अकेला वक्त मिल जाए?"

अंतिम वाक्य खत्म करते-करते, वसंतलाल हंसा, "सयानी औरतें बहुत दूर तक की सोचती हैं।··· मगर हमारे करम में तो, शायद, तुम्हें बहू-बेटी की तरह विदा करना ही लिखा है, रामकली!"

रामकली ने चिहुंककर, वसंतलाल की ओर देखा। उसके कहने में व्यंग नहीं, विषाद था। रामकली को कुछ नहीं सूझा कि वह अपनी ओर से क्या कहे। मन तो हुआ कि कहे, 'कलेजा तो तुम्हें बाप का ही दिया है, ईश्वर ने!' लेकिन कहा नहीं गया। क्षण-भर को मन में यह भी आया कि बहुत हठ रखके चलना कौन ज़रूरी है। सिनेमा देखने की बात तय हो गई होती, तो कहीं साढ़े बारह तक डेरे पर पहुंचती। लड़खड़ाहट के बहाने वसंतलाल के ऊपर गिरने को हो पड़े और घड़ी भर को यहां रुक ही जाए, तो कौन-सा हर्ज है? वसंतलाल की भलमनसाहत की इतनी-सी कीमत चुका देना कोई बहुत बड़ी बात तो होगी नहीं?··· मगर अपने भीतर पंख तोलते पक्षी की उड़ान जैसे फैसले को वह सिर्फ महसूस करती ही रह गई।

भूरे और उन दोनों के बीच का फासला इतना कम था कि वसंतलाल के रुके रहने की गुंजाइश थी नहीं।

"भूरे इस वक्त भी दो सवारी खींच लोगे, भइया? कटरे पहुंचते तक तो खासी चढ़ाई पड़ेगी। खैर, मैं उतर लूंगा, रामकली को तुम चढ़ा ही लोगे।"—वसंतलाल ने धीमी आवाज़ में कहा और भूरे के 'हां' भरते ही, रिक्शे के पास में आकर लग गया कि रामकली बैठ ले, तो खुद भी बैठ जाए।

दोनों बैठ चुके, तो अब तक चुप ही चले आ रहे भूरे ने हलकी-सी मुस्कराहट के साथ कहा, "हम तो आज रामो भाभी को वापस पहुंचाने के पक्ष में थे नहीं, भइया!"

बाहर रोशनी काफी मद्धिम थी। न जाने भूरे ने रामकली की किंचित् मस्त पड़ती हुई आकृति को देखा या सिर्फ महसूस किया, जब तक मैं उन दोनों में से कोई कुछ कहता—भूरे ने रिक्शा आगे बढ़ा लिया।

चौक पहुंचने तक मैं वसंतलाल को यही लगता रहा कि रामकली की उपस्थिति के अहसास में पड़े रहने के अलावा और कोई नियति है नहीं। औपचारिक किस्म की बातचीत को मन नहीं था, भविष्य की हद तक छूती हुई बातों के लिए गुंजाइश नहीं। कोतवाली से आगे बढ़ चुकने पर वसंतलाल को लगा कि रामकली के बिना कहे ही वह उतर पड़ने की मानसिक सतर्कता महसूस करने लगा है।

अचानक ही वसंतलाल को लगा कि हो सकता है, यह रामकली से आखिरी भेंट हो? शादी कर ली, तो अमोलकचंद उसे जौनपुर रहने भी भेज सकता है। कल्पना-मात्र से ही वसंतलाल को गहरे अवसाद ने जकड़ लिया और जब अतरसुइया गोल चौराहे के पास के एकांत में वह धीमे से उतर पड़ा, तो यह कहते-कहते, उसकी आंखों में आंसू आ गए कि, "रामकली, जिंदगी से हमने अपने पांवों पर ही ध्वंस के रहने का सबक सीखा है। हमारा कहा-सुना माफ करना और भूली-भटकी कभी ममफोर्डगंज वाले डेरे पर भी आती रहना।"

रामकली को इस बार लगा, जैसे रिक्शे पर से उतरते हुए वसंतलाल उसके भीतर के सारे दर्प और ग्लानि को अपने साथ समेट ले गया है। रिक्शा भूरे ने आगे बढ़ाया, तो वह कुछ देर तक गर्दन पीछे मोड़े, वसंतलाल की ओर देखती रही।

अपनी निश्चितता के विपरीत कमरे में रोशनी देखकर, वह चौंकी कि शायद, वापस लौट आया है। गौर से देखा, तो पाया—वह खिड़की से झांक रहा था। रिक्शे से उतरकर दो मिनट सोचने का अवसर भी नहीं मिला। बच्चों को दे देने के लिए दस रुपये का जो नोट हाथ में लिया था, भूरे को दे नहीं पाई। शरीर पर धीमे से धूल झाड़ने की सी मुद्रा में, जल्दी-जल्दी सिर्फ इतना ही कहा, "अच्छा, तुम चलो, भूरे! वसंता से कहना, हमारा फिक्र न रखा करें, बच्चों को देखें।"

कुछ तेज़ कदम उठाती, रामकली दरवाज़े तक पहुंची, तो सिटकनी गिराने की आवाज़ साफ-साफ सुनाई दे गई। खुद अमोलकचंद ने ही दरवाज़ा खोला था। जो कुछ कहना होगा, भीतर पहुंच जाने पर ही कहेगी, यह तय करके, रामकली ने आंखें ऊपर उठाकर अमोलकचंद की ओर देखा नहीं।

सिनेमा का बहाना वह कर सकती थी, लेकिन उसको डर था कि मुंह से अभी बदबू आ रही होगी।

बसंतलाल की संगति में एक गहरी मानसिक थकान से भरी, वह तय करके चली थी कि डेरे पर जाकर, चुपचाप सो जाएगी। सुबह भी देर तक सोई रहेगी। रामकली ने दरवाजा पार करके, अन्दर कमरे में पांव रखते ही देखा—दरी पर दो आदमी और भी बैठे हैं। अनुमान लगाया, उसके साथी लोग होंगे। अमोलक के साथ उन दोनों ने भी घूमकर देखा, तो रामकली सहमी-सी खड़ी रह गई। चलते में पांव लड़खड़ा जाने का सा भ्रम हो रहा था। कहीं सचमुच लड़खड़ा गई, तो ये लोग क्या कहेंगे।

अमोलकचंद मिर्जापुर रुका नहीं। अपने दोस्तों के साथ शाम की जनता से वापस आ गया था। काफी देर रामकली की प्रतीक्षा करने के बाद, तीनों होटल में खा-पी आए थे। थोड़ा-सा सोचने-संभलने को समय मिला होता, तो रामकली कह देती कि सिनेमा देखने चली गई थी। वापसी का समय भी ठीक ही था। शराब के लिए भी कहा जा सकता था कि 'जाते वक्त थोड़ी-सी लेती गई थी।' मगर अमोलकचंद ने अचानक जो पूछा कि 'कहां से लौट रही हो?' तो जल्दी में मुंह से सिर्फ इतना ही निकलकर रह गया, "ममफोरडगंज…"

"ममफोर्डगंज से? समझ गया! अच्छा कोई बात नहीं। आ, ठीक से पलंग पर बैठ जा। हम लोग तो तेरे इंतजार में थककर खा-पी चुके। तू? तू भी तो खा-पी आई होगी?"—क्रुद्धता की मुद्रा में से अपना पूछना प्रारम्भ करके अमोलकचंद जितनी नाटकीयता के साथ हंस भी दिया, रामकली को इससे सिर्फ असुविधा ही हुई।

नशा अत्यन्त मद्धिम-सा ही रह गया था, मगर फिर भी भ्रम बना हुआ था कि बोलने को मुंह खोला, तो शायद, बदबू का भभका फूट पड़े।

उसको सांसत में पड़ा देख, दरी पर बैठे हुए दोनों लोग और ज्यादा उसे घूर-घूरकर देखने लगे थे। उनमें से एक के होंठ तो बसंतलाल के होंठों से भी ज्यादा भद्दे और मोटे थे। रामकली को घबराहट-सी अनुभव होने लगी और वह पलंग की ओर बढ़ने की जगह, रसोई वाली कोठरी की तरफ चल पड़ी।

अभी वह कोठरी के फर्श पर ही बैठ जाने को झुकी थी कि अमोलकचंद ने उसकी दोनों कांखों में अंगुलियां फंसाकर, सीधा खड़ा कर लिया। उसने मुंह रामकली की ओर बढ़ाया, तो शराब की बदबू रामकली के चेहरे पर की

त्वचा को छीलती हुई-सी निकल गई।

रामकली का स्वर रुआंसा-सा हो आया, "मुझे थोड़ा यहीं आराम कर लेने दो।"...

"हां...आं... खसम के पास से लौटने पर आराम की जरूरत तो महसूस होगी ही ?... मगर हम लोग भी तो बड़ी देर से तुम्हारी याद में आंसू बहा रहे हैं... वो दोनों तो बेचारे ओबरा से यहां तक सिर्फ तुझे देखने की गरज से ही चले आए कि अपनी होने वाली भाभी का रूप-रंग तो देखते जाएं।"

व्यंग और क्रूरता, अमोलकचंद की आवाज में उसे दोनों की समान रूप से अनुभूति हुई। जिस मुद्रा में वह 'हम लोग' सर्वनाम का उच्चारण कर रहा था, उसे बहुत भद्दा लगा।

"कल सुबह देख लेंगे। अभी कौन-सी जल्दी है ?" कहते हुए रामकली ने उसकी बाहों पर से अलग होने की चेष्टा की, तो उसने और कसकर थाम लिया। लगभग बांहों में उठाए हुए बाहर वाले कमरे में ले आने के बाद, रामकली को उसने पलंग पर औंधा कर दिया, "क्यों भाई, जनारदन बाबू ! है या नहीं, हजारों में एक ?"

अपने कपड़े संभालते हुए उठ बैठने की हड़बड़ाहट में रामकली जान नहीं पाई कि अमोलकचंद के इस बेहूदेपन की उन लोगों पर क्या प्रतिक्रिया हुई। उसका पेटीकोट काफी ऊपर तक सिमट गया था। वह तुरंत संभलकर बैठ गई और कपड़े ठीक कर लिए, लेकिन ज्यों ही उसने दरी पर बैठे हुए उन दोनों पर दृष्टि डाली, दोनों को ही अत्यन्त निर्लज्जतापूर्वक हंसते हुए पाया। वह अत्यन्त विचलित हो उठी।

अमोलकचंद ने उसके कपोलों पर अपने दायें हाथ को फिराते हुए, हलकी-सी चुटकी काट ली, तो रामकली ने उसका हाथ झिटक दिया, "बदतमीजी मत करो। पहले इन दोनों से चले जाने को कह दो, फिर जो जी में आए..."

"करते रहना—आ—" अमोलकचंद व्यंग से होंठ भींचता हुआ बोला, "क्यों, बाबू जनारदन ! एक सौ एक बार किनारे लगी हुई औरत जब एक छोटी-सी चुटकी में 'हाय अल्ला' करने लगे, तो ससुरी और खिल आती है कि नहीं ?"

रामकली अब जान पाई कि जनार्दन उसी भद्दे और मोटे होंठों वाले व्यक्ति का नाम है। उसने बड़ी जोर से सुट्टा लगाकर, सिगरेट को फर्श पर

रगड़कर बुझा दिया और फिर एकटक रामकली की तरफ देखता हुआ बोला, "इसमें कतई शक नहीं, यार ठेकेदार, कि हो तुम किस्मत वाले !"

"तुम भी छूकर देखो" कहते हुए, अमोलकचंद ने रामकली का हाथ उसकी ओर बढ़ाया ही था कि रामकली ने भरपूर जोर से अपना हाथ पीछे खींचा और दीवार से टकरा गई। बसंतलाल के साथ के आत्मीयता और सम्मान-भरे वातावरण में से लौटते ही इस तरह की अप्रत्याशित और अपमानजनक स्थिति में पड़कर वह बिलकुल घबरा गई थी, और उसे तीनों के चेहरों पर एक समान तरह के आततायीपन की प्रतीति हो रही थी। शराब की दुर्गन्ध की तरह ही, वासना उन सभी की आंखों से चू रही थी।

अमोलकचंद का रवैया उसे काफी पहले से ही कुछ गलत-सा लगने लगा था। साथ होने के बाद, वह अक्सर दस-बीस रुपये पकड़ा देता था और रामकली डांट देती थी, तो हंसने लगता था कि 'मैं तो ठेकेदार आदमी हूं, मजदूरों को भी मेहनताना दिया करता हूं।'

रामकली को इसमें सिर्फ मजाक दिखता रहा था, और इस तरह अक्सर दिए गए पैसों से ही उसने अपने लिए बहुत-सी जरूरत की चीजें खरीदी थीं। पैसों के मामले में तंगदस्ती से भी बची रही। मगर उसके इस वक्त के व्यवहार से रामकली दहशत में आ गई। अपने भीतर के सारे साहस को बटोरकर, भरपूर घृणा के साथ वह चिल्ला उठी, "मुझे क्या तुमने रंडी समझ रखा है ?"

अपना प्रश्न पूरा करने तक में ही उसकी स्मृति में कौंध गया कि ठीक यही सवाल उसने एक दिन कमला पहलवान से भी तो किया था ?

"होती को समझने का सवाल ही कहां पैदा होता है, रामकली !"—अमोलकचंद ने उसकी कलाई को अपनी पूरी ताकत से कसते हुए कहा, "देख, नाटक करने से कुछ होना-जाना नहीं है। शादी का भूत तो मेरे माथे से तेरे रिक्शेवाले को पैसे दिए बिना ही उतर आते और कांपते हुए-से गले से 'ममफोर्डगंज' निकलते ही उतर गया।...यों, भी दो-तीन नावों की सवारी ज्यादा दूर तक सधती नहीं, रामकली !...कमला पहलवान तो मुझसे पहले ही कह चुका था कि किसी एक के कंधे से लगे रहना तेरे बस का नहीं। यों भी दो बच्चों को किनारे छोड़ आने वाली में अपनी घर-गिरस्थी खोजने वाला मर्द उल्लू का पट्ठा नहीं, तो और क्या होगा ? मगर हम तो यही कहते हैं कि तू मौज कर। कोई कमी अगर तुझको दी, तो हम लोगों का नाम भी

अमोलकचंद ठेकेदार नहीं।"

अपनी बात पूरी करने के साथ उसने अपना मुंह रामकली की ओर चढ़ाया ही था कि रामकली ने हथेली से पीछे को ठेल दिया।

बस्ती के बिलकुल कोने का मकान। कहीं अंधेरे में भूंकते हुए कुत्तों का शोर। अपने ही भीतर से कोई नैतिक आधार न मिल पाने के कारण टूटता हुआ-सा साहस। बसतलाल के सामने बोलते हुए अनुभव होता सारा आत्मदर्प अब फन कुचले सर्प की तरह अपने ही अन्दर मूंज के रस्से की तरह किरकिराने लगा है।

रामकली फफक-फफककर रोने लगी थी कि आंसुओं से भरी आंखों से ही उसे जनार्दन बाबू का हाथ अपनी ओर बढ़ता दिख गया। रामकली को इस बात का अहसास हो गया कि या इन सबकी हवस मिटाने या अपनी पूरी ताकत से विद्रोह करने के अलावा और कोई रास्ता उसके पास रह नहीं गया है। जब तक जनार्दन बाबू रामकली की कलाई थाम पाता, रामकली ने दीवार से पीठ सटाकर, अपनी भरपूर ताकत से लात मार दी। जनार्दन बाबू के ठीक मुंह पर उसके दायें पांव का तलुआ ऐसा कसकर पड़ा कि वह 'अरे बाप' चिल्लाता हुआ, दूर छिटक गया और मुंह पर लगी हथेली को उसने हटाया ही था कि खून थचकों की तरह बाहर निकल आया।

जब तक उसका साथी और अमोलकचंद कोई निर्णय लें, रामकली पलंग पर से नीचे कूद गई, "हरामी, बिना अपनी मर्जी के तो मैंने अपने ब्याहते को भी नहीं छूने दिया, तू ससुरा कौन होता है साले ..."

एक झापड़ जनार्दन की कनपटी पर और जड़ते हुए, रामकली पूरी ताकत से चिल्ला उठी, "तुम तीनों कुत्ते यहां से बाहर निकल जाओ, नहीं तो मैं तुम तीनों का खून पी जाऊंगी। पुलिसवालों को बुलवाकर तीनों को जेल में न करवा दूं, तो मेरा नाम रामकली नहीं। ...अरे, ओ पड़ोस वालो! सब लोग मुरदा हो चुके क्या? अरे, ओ दर्शन बाबू ..."

रामकली की इस आकस्मिक और प्रचण्ड आक्रामकता से तीनों ही हकबका गए। जनार्दन मुंह पर हाथ लगाए हुए, दरवाजे से बाहर कूद गया। साथ-साथ उसका साथी भी तेजी से बाहर निकल गया, तो हड़बड़ी की सी हालत में अमोलकचंद भी तेजी से बाहर निकल गया। पड़ोस से जलकल विभाग के बाबू रामकिशन की आवाज उसे रात के सन्नाटे में साफ-साफ सुनाई दे गई कि 'भई, रामकली के चिल्लाने की सी आवाज कहां से आ रही है?'

कहीं सचमुच पुलिस में चक्कर में न उलझना पड़ जाए, इस भय से अमोलकचंद चुपचाप अतरसुइया की तरफ निकलती हुई गली में आगे बढ़ गया कि अब सुबह हो जाने पर देखा जाएगा। रामकली से माफी मांग लेगा कि ज़्यादा नशे में होने से कुछ होश नहीं रहा। बाद का निबटना निबटता रहेगा।

तीनों के बाहर भागते ही, रामकली ने दरवाज़ा भीतर से बंद करके रोशनी बुझा दी कि कहीं सचमुच अड़ोस-पड़ोस के लोग इकट्ठे न हो जाएं। घुप्प अंधेरे में फर्श पर बैठी-बैठी ही न जाने कब तक वह रोती रही और कब आंख लग गई।

अब इस वक्त जबकि सर्दियों की शुरुआत हो चुकने पर भी, धूप फैल चुकी है। नींद टूटते ही, रामकली बाहर निकल आई। दरवाज़े पर ताला लगाकर, चाबी वहीं खिड़की से भीतर छोड़ दी। बदहवासी और हताशा के अलावा अपने साथ उसने सिर्फ थोड़े-से कपड़े रख लिए और बचे-खुचे पैसे। रात के हादसे पर सोचते, पैदल चलने में कितना रास्ता पार हो गया।

बाहर बच्चा साहब की कोठी तक आ पहुंचने का बोध था, लेकिन अपने भीतर ही भीतर वह कितना चली है, इसका ठीक अनुमान लगा नहीं सकी रामकली। घण्टाघर की घड़ी में सुबह के सात बज चुके। रामकली को कुछ नहीं सूझ रहा था कि उसे अब कहां जाना है और कहां लौटना है। भविष्य-विहीन हो जाने वाली औरतों में छाया की तरह साथ लग जाने वाली आत्म-हत्या की मानसिकता उसके हृदय से मस्तिष्क तक कई बार कौंध चुकी थी। अपनी अबूझ निरुपायता में, उसने इस बात को साफ-साफ पहचाना, वह अंधेरे में बिना जगत के कुएं के करीब पहुंच जाने के से चौकन्नेपन से ग्रस्त हो जा रही है।

वह जैसे निरुद्देश्यता के निरेपन में चलती रही। उसे लगा, रास्ता चलते में ठोकर खाने या आते-जाते लोगों से टकराने से बचने की सावधानता में वह आदमियों की भीड़ में फंस गए सांप की तरह हो आई है। देखने की सारी क्षमता जैसे आंखों में से पानी की तरह नीचे को छीजती हुई, पांवों के अंगूठों पर ठहर गई है। वह एक जगह खड़ी रह सकने की स्थिति में नहीं थी। बाढ़ में बहते हुए की तरह वह सिर्फ चल सकती थी। लगभग उलटी तरफ लोकनाथ वाली सब्जी मण्डी की तरफ मुड़ चुकने की प्रतीति भी उसे तब हुई, जब बदहवास भागती हुई लम्बे-लम्बे सींगोंवाली एक गाय लगभग उसको छूती हुई-

सो निकल गई।

रामकली सहमकर एक ओर खड़ी हो गई। भागती हुई गाय रुक गई और एक जगह से उसने पालक की गड्डी को मुंह में भरा। सब्जी वाले ने तड़ाक से एक डण्डा उसकी पीठ पर जड़ दिया और पालक की अधखाई गड्डी मुंह से बाहर खींच ली। फिर पास ही चौकी पर बैठे जलेबिया तलते पंडित से बोला, "उस कोने के सब्जीवाले ससुरी को इस ओर खदेड़ देते हैं और इस कोने के सब्जीवाले ससुरी को उस ओर खदेड़ देते हैं" और इस कोने के सब्जी वाले उस तरफ। ये किसी से नहीं होता कि पकड़कर काजीहौस पहुंचा आवें। वैसे तो दूध भी इसको होता है, मगर घर से तो खूंटा उखाड़कर चली आती है, चौराहे में जो चाहे, इसे दुह ले। इन आवारा जानवरों के मारे सब्जी बेचना गुनाह हो गया। गाय पालने के शौकीन भी ससुरे ऐसे पैदा हो गए हैं कि जानबूझ कर छुट्टा छोड़ देते हैं।"

अब कहीं जाकर रामकली को याद आया कि गाय रस्सी-खूंटे समेत भाग रही है और उसका गोबरसना खूंटा सड़क पर खड़खड़ाता जा रहा है। गाय को, शायद, उधर से इस तरफ खदेड़ दिया गया था और वह अपने लम्बे बेडौल सींगों को जमीन की तरफ झुकाए हुए तेजी से भाग रही थी।

अचानक ही रामकली को लगा, उस गाय में और खुद उसकी जिंदगी में कोई अन्तर है नहीं। उसको लगा, सब्जीवाले ने जो कुछ कहा, खुद उसके बारे में कहा है।

हताशा और ग्लानि से रामकली की आंखें डबडबा आईं और उसने धोती के पल्लू से तुरंत मुंह ढांप लिया। फिर भी उसे लगा, जैसे सारे लोगों ने उसे देख लिया है। कुछ भी न सूझने की सी स्थिति में ही उसका हाथ कमर में बाईं ओर खोंसी हुई किनारी की तरफ गया। गांठ खोलकर, पांच रुपये का एक नोट उसने आगे की तरफ बढ़ा दिया, "पंडित जी, जलेबी तौल देना।"

उसे याद आया कि शायद, अपनी बदहवासी को छिपाने की हड़बड़ी में ही उसने जलेबियां खरीद ली हैं; मगर फिर उसके होंठों पर एक मद्धिम-सी चमक फैल गई। चुपके से आंखें पोंछकर, उसने जलेबी की पुड़िया हाथों में ले और चौराहे पर खड़े एक रिक्शे वाले के पास पहुंचकर, बोली, "क्यों, भय्या, ममफोर्डगंज की तरफ चलोगे?"

६

लोकनाथ से रिक्शा हनुमान मंदिर तक निकल आया, इस बीच रामकली को यही लगता रहा, भीतर ही भीतर वह हांफती चली आ रही है। कपड़ों के थैले में से छोटा-सा तौलिया निकालकर, उसने अपने गले के आस-पास का पसीना पोंछना चाहा, तो देखा, ब्लाउज़ अब तक में काफी मटमैला-सा हो आया है और रसामने वाले हिस्से में तेलहा किस्म के धब्बे पड़े हुए हैं। रामकली ने समझ लिया, शराब के सुरूर में गोश्त का शोरबा गिरा होगा, उसीके दाग हैं। और अब कहीं जाकर, उसे वसंतलाल के साथ बीता समय अपनी सम्पूर्णता में याद आता गया। इस बात से कि उसने अन्दाज़ा लगाया कि वह किस तरह की मानसिक बदहवासी में रही है। आखिर क्यों नहीं उसे अब तक वसंतलाल के साथ बिताए हुए समय की प्रतीति हुई ? उसे रात को रिक्शे से उतरकर, 'रामकली, हमारा कहा-सुना माफ करना।' कहते हुए वसंतलाल की आकृति याद आई और अब पहली बार उसकी आंखों से आंसू अनायास बाहर फूट पड़े।

जब वसंतलाल को छोड़ कमला पहलवान के यहां चल पड़ी थी, तब भी यही हुआ था। इतने ही तैश में भी और हड़बड़ी में भी, जैसे कोई प्लेटफार्म से छूटती हुई रेल पकड़नी हो। न अतीत पर सोचने का विवेक, न दूर-दूर तक भविष्य को ही टोह लेने की चिंता—बस सिर्फ यह कि यहां अब टिकेगी नहीं। तब तो नजदीक का फासला था और रात का सन्नाटा—रामकली पैदल ही दौड़ी थी। जैसे कि वसंतलाल को यह भी महसूस कराना चाहती हो कि 'लो, हम चल भी दीं और वापस लौटने वाली भी चोट्टी कोई दूसरी होगी, रामकली नहीं।'

आज सुबह-सुबह का वक्त है। रोशनी से खिला हुआ-सा वातावरण उसे भीतर तक चौकन्ना किए दे रहा है। तब वसंतलाल के पास से चल देना था, अब उसके पास लौटना है। हालत मन की अब भी वही है। अपने रिक्शे में बैठे हुए होने का अहसास ही छूट जाता है, लगता है, पैदल ही दौड़ी चली जा रही है। यह इस तरह के हाहाकार में का दौड़ना, रामकली जान रही है कि नदी की तरह का बहना नहीं है—सिर्फ पानी की तरह का दौड़ना है, जिसकी जगह अंततः सिर्फ किसी गड्ढे में ही हो सकती है।

सिर्फ लेग में और अपने-आपको संभाल न सकने में ये ही नहीं, लेकिन अमोलकचंद को त्यागते समय कुछ ऐसा पीछे छूट जाने की प्रतीति रामकली को नहीं, जैसी बसंता के वक्त थी। उस वक्त दो बच्चे थे, इस वक्त सिर्फ दूसरा महीना शुरू हुआ है और इसको लेकर भी—सिर्फ लोकनाथ सब्जी मण्डी और यहां तक के अंतराल में ही—रामकली तय कर चुकी है कि उसे सफा करना है। अंततः बसंतलाल क्या करेगा, इसे ईश्वर ही जाने, लेकिन अब तक का जो उसका अनुभव रामकली की स्मृति में है—और जो रूप बसंतलाल का उसने अभी बीते कल के कुछ वक्त के साहचर्य में देखा है—रामकली यह आशा तो कर सकती है कि बसंतलाल फिर भी सहेगा। ···लेकिन खुद रामकली को ही अपनी यह हकीकत आहत करती रहेगी कि अमोलकचंद छूट गया, लेकिन उसकी फजीहत जिंदगी-भर को साथ लग गई।

जैसे यह इतमीनान कर लेना चाहती हो कि अभी बाहर से तो फूलो ताई या पीपलवाली मौसी के टोहने में आने लायक भी कुछ नहीं, रामकली ने चोर आंख से एक बार अपने उदर-प्रदेश को झांक लिया। स्तनों में फिर भराव आ गया है। पेट की ओर देखने में दिक्कत होती है। कल दोपहर बाद को लगाए हुए पाउडर का अवशिष्ट हिस्सा नाभि के गहरेपन में सिमटा पड़ा था। रामकली ने तुरत अपनी आंखें ऊपर उठा लीं, जैसे रिक्शे वाले या सड़क चलते लोगों ने देख लिया हो। आंखों के ठीक सामने उसे हनुमान-मंदिर के बाहरी द्वार के ऊपर बना विशाल भीष्म-रथ दिखाई दिया। जितने वह तय कर पाती कि प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़े, तब तक में रिक्शा काफी आगे निकल गया।

जब लोकनाथ सब्जी मण्डी से चली थी, तब तो रामकली के भीतर इतना हाहाकार था कि बस, एक सांस में बसंतलाल के दरवाजे पर जा लगे, तो अच्छा। कटरा चौराहे तक आते-आते वास्तविकता आकार ग्रहण करती हुई-सी लगने लगी है और सारे जिस्म में यह हताशा पसरती जाती है कि कहीं अगर बसंतलाल ने रुख फेर लिया या हिकारत की आंख से देखना शुरू किया कि 'अब हमें दूसरों की जूठन सहेजकर रखने का हौसला रह नहीं गया, रामकली'···तो?

रामकली को लगा, एक हलकी-सी कंपकंपी उसे छूटी है। वह थोड़ा संभलकर बैठ गई। रिक्शे वाले से उसने यों ही पूछ लिया कि 'क्यों भैया, कहां

के रहने वाले हो ?" और अपने-आपको यह तसल्ली देने की कोशिश की कि नहीं, वसंतलाल धोखा नहीं देगा।

रिक्शे वाला, शायद, थोड़ा पीछे को मुड़ा था और यह बताया था कि वह सोरांव तहसील के किसी गांव का रहने वाला है, लेकिन रामकली ने जैसे कुछ भी सुना नहीं। वह तो सिर्फ यही स्मरण करने में रह गई कि कल रात जब तक वह वसंता के साथ थी—उसने आखिर कहा क्या-क्या था ?

इस वक्त जाने रामकली को यह अचानक कैसे याद आ गया कि जिस रात के झगड़े के बाद रामकली कमला पहलवान के यहां चली गई थी, वसंतलाल ने क्या-क्या कहा था और उसने खुद कैसे-कैसे जवाब दिए थे। एक गहरी तलखी अपने-आपको लेकर रामकली ने अब, इस वक्त, पहली बार अनुभव की कि नहीं, दोष वसंता के उम्रदार और तंगदस्त होने में नहीं था—उसकी अपनी हविश और उतावलेपन में था। अचानक ही उसने फिर पूछ लिया कि—'यें रिक्शा वाले भैया, का नाम है तुम्हारा, दिन-भर में कितने की मजूरी कर लेते हो ?'

रिक्शा वाले का यह बताना कि 'अभी आजकल तो कुछ खास नहीं, लेकिन पन्द्रह-बीस दिनों बाद ही माघ का महीना लगेगा, तब अच्छी कमाई होने लगेगी'—पहले तो रामकली को सिर्फ सामान्य लगा और उसने 'हूं' कहते हुए, औपचारिकता में अपना सिर ऐसा हिलाया, जैसे रिक्शा वाले की पीठ पर आईना जड़ा हुआ हो।...लेकिन अचानक ही उसे हरगुन पंडित की याद हो आई। हरगुन पंडित से कोई उस तरह का वास्ता तो हो नहीं पाया, लेकिन मन की गहराइयों में कहीं वह तालाब की सतह पर पड़े हुए प्रतिबिम्ब की तरह रामकली में हमेशा अस्तित्वमय बना रहता है—जैसे कोई आकार धारण करता हुआ बच्चा गर्भ में हो। अपने जिस्म को अमोलकचंद ठेकेदार को देने का पश्चाताप रामकली अनुभव नहीं करेगी, वह अपनी हविश का पाया हुआ था, लेकिन कमला पहलवान को अपनी सारी वितृष्णा के बावजूद अपना बैठने का और हरगुन पंडित को अपने भीतर के सारे सम्मोहन के बावजूद न अपना सकने का असंतोष रामकली में शायद, सदैव रहेगा। हालांकि हरगुन पंडित के साथ तो सिर्फ मन का ही निबाह हो सकता था, जिंदगी का नहीं।

हरगुन पंडित के साथ की पहली-पहली, मुंह अंधेरी यात्रा को स्मरण करने की कोशिशों में जब तक रही, रामकली को अपना इस वक्त का त्रास भूला रहा। अपने स्वप्नजीवी औरत होने की स्मृति के लिए सिर्फ हरगुन

पंडित के आह्वान में बिताया गया समय ही निरन्तर साथ रहता चला आ रहा है। और अब भी, जबकि रामकली सनातन और सम्पूर्ण रूप से अपने बच्चों में और बसंतलाल में लौटना चाहती है—एक लम्बी, दिशाहीन और अंधी यात्रा से थकी हुई औरत की तरह—हरगुन पंडित के साथ बिताया हुआ वक्त पाप में बिताया हुआ नहीं लगता है।

रामकली का अमोलकचंद से झगड़े के बाद से अब तक से निरन्तर पश्चाताप, हताशा और आक्रोश में झुलसती हुई-सी आंखें इस वक्त, किंचित् प्रशांतता की अनुभूति से तरल हो आई थीं। उसने मन ही मन मानता मानी कि कदाचित् बसंतलाल ने दुतकारा नहीं, तो आते माघ में कभी सब लोगों को साथ लेकर गंगा-नहान को जाएगी।

गंगा और यमुना नदी को हरगुन पंडित के साथ मां की कोख में जन्म लेते बच्चे की सी अलौकिकता में उगते हुए सूरज की किरणों से आप्लावित देखा था रामकली ने। गंगा मैया को तब का देखना भूलता नहीं है और अब के माघ में—इतनी सारी फजीहतों से गुजरने के बाद—भी रामकली गंगा-नहान को जाएगी, तो फिर उसी तरह जलराशि में डुबकी लगाएगी—अगल-बगल बसंतलाल और बच्चे नहा रहे होंगे और नरक से लौट चुकने की सी आश्वस्ति में रामकली डुबकी लगाएगी, तो मन में यही भावना होगी कि —*'मैया, तू ही है, जिसके आंचल में आकर ज़िंदगी पाप नहीं लगती।'*

यह सचमुच कितना विचित्र है कि बसंतलाल और बच्चों के चेहरों को अब वह अपनी स्मृति में ज्यादा नज़दीक और गहराई से देख पा रही है। कल जब बसंतलाल दारू के नशे में अपने सामान्य स्वभाव से हटकर, कुछ दबंग होकर बोल रहा था—उसका चेचक के दागों से भरा चेहरा कितना विलक्षण लग रहा था? जैसे उसकी आत्मा ही चेहरा बन गई हो। रामकली के घर छोड़कर चल देने के इन पिछले लगभग दो वर्षों में बसंतलाल ने जैसे दोनों छोटे बच्चों को पाला-पोसा है, बातें करते वक्त जैसे उसकी सहिष्णुता और मनुष्यता का सारा आलोक बसंतलाल की आंखों में उतर आता था।

कितना अच्छा होता, यदि रामकली कल ही अपने सारे अहंकार को तिलांजलि दे देती कि—'बसंता, तुम्हें एतराज नहीं, तो मैं··'

लेकिन नहीं। अमोलकचंद ठेकेदार के पास वापस लौटकर, कल रात का त्रास न भुगता होता रामकली ने, तो उसकी वापसी पूरी होती नहीं। उसके भीतर का नागिनपन तो कल रात कुचला गया है और जो हकीकत कमला

पहलवान से शुरू हुई थी, उसका सम्पूर्ण साक्षात्कार रामकली अब कर चुकी कि उसकी नियति—वसंतलाल से बाहर—सिर्फ रखैल की ही हो सकती है।

सोचते-सोचते रामकली का मन विषाद से भरता जाता है। कल जब वसंतलाल के यहां गई थी, तो कहने वालों की फजीहतों से बचत तो कल भी नहीं थी—और लाख घुमा-फिराकर ही सही, फूलो ताई और पीपलवाली मौसी ने काफी बातें कह भी डाली थीं—लेकिन फिर भी मन में कहीं वसंतलाल के अनुरोध पर आए हुए होने का इतमीनान भीतर था और मेहमानों की सी वापसी हर क्षण अपने पास सुरक्षित लगती थी।…आज वैसा नहीं है। आज तो जब वसंतलाल पेड़ की तरह खड़ा रहेगा, तभी रामकली भी आंधी झेल पाएगी।

रिक्शा, पालीटेक्नीक वाले चौराहे से नीचे ढलान पर, काफी तेजी से चलने लगा था। रामकली ने धोती के एक छोर से अपनी आंखों को पोंछा, तिरछे हो गए जलेबी के पुड़े को सीधा करते हुए, झोले को ठीक से संभाला और उसका रोम-रोम सिर्फ इसी अहसास के प्रति एकाग्र हो गया कि बस, निगम चौराहा आया जाता है और फिर घर का फासला रह ही कितना जाएगा!

रामकली यह बखूबी जानती थी कि यह कोई बचना नहीं है। जान-पहचान के लोगों की आंखों के त्रास को तो देर-सबेर झेलना ही होगा—फिर भी, उसने मुंह पर धोती का पल्लू कर लिया कि कम से कम इतना फैसला तो तमाशबीनों की नजर से बचे-बचे हो जाए कि वह गलत ठिकाने पर—या कि गलत औरत की तरह—तो नहीं लौट आई है।

उसको यह भी आशंका थी कि वसंतलाल हो सकता है प्रेस के काम पर निकल गया हो और बच्चे स्कूल चले गए हों और घर की चाबी वसंतलाल फूलो ताई या भूरे की भाभी को सौंप गया हो? उनसे चाबी मांगने का साहस उसके बस का नहीं। ऐसा ही हुआ, तो इसी रिक्शे में वापस मुड़कर, दिन-भर का समय कहीं अन्यत्र व्यतीत करने का निश्चय भी उसने सिर्फ कुछ ही क्षणों में कर लिया। मन में तो यहां तक आया कि रात के अंधेरे में ही इस ओर आती, तो अच्छा था। वसंतलाल के फैसले को वहन करने में आसानी होती—चाहे वह फैसला 'हां' में होता, या 'ना' में।…लेकिन यह बात ममफोर्डगंज के लिए रिक्शा तय करने से पहले ही मन में आ गई होती, तो ठीक था। इतने निकट पहुंचकर तो मन में अब सिर्फ यही रह गया है कि जो

होना हो, हो।

रिक्शे पर से ही रामकली ने दरवाज़े की ओर ऐसे झांका, जैसे आंखों से हाथों की तरह टोहना और दस्तक देना चाहती हो। अगल-बगल से गुज़रने वालों को वह वक्त देना नहीं चाहती थी। जैसे कोई आहत सर्पिणी बाँबी में प्रवेश करने की त्वरा में हो, रामकली को अपना सारा जिस्म सुई की तरह नुकीली हो आया-सा प्रतीत हुआ और यह देखते ही कि दरवाज़े का एक पल्ला खुला हुआ है और फर्श पर बसंतलाल की पीठ दिखाई दे रही है—रामकली तेज़ी से नीचे उतरी और, परिन्दे की सी उड़ान अपने भीतर महसूस करते हुए, सीधे कमरे में चली गई। चारपाई पर छुटकी अभी तक सोई पड़ी थी। रामकली धम से एक किनारे बैठ गई और उसे लगा, दम फूल आया है—बोल नहीं पाएगी।

नाश्ता करता हुआ रामरतन और बसंतलाल, दोनों ही भौचक्कपन में जड़ दिए गए से दिखाई दे रहे थे। रामकली ज़ोर लगाकर अपने-आपमें वापस लौटी और अपने झोले में रखे बटुये में से दो रुपये का एक नोट निकालकर, बसंतलाल को देती बोली, "रिक्शावाला खड़ा होगा, बसंता! उसे निपटा दो।"

रामकली को लगा, उसका एक-एक शब्द आंखों के भीतर से निकला है—होंठों पर से नहीं। बसंतलाल ने अनुमान लगा लिया कि रामकली इस वक्त लगभग बदहवासी में है। बिना किसी तरह का तर्क या प्रतिवाद किए, वह तेज़ी से उठा और रामकली के हाथ से नोट लेकर, बाहर निकल गया।

रिक्शे वाले को विदा करके बसंतलाल भीतर वापस आया, तो देखा रामकली ने छुटकी को अपनी बाहों में भींच रखा है और फफक-फफककर रो रही है। श्यामकली भी रोने लगी थी और उसका रोना मां की दबी सिसकारियों के बीच से काफी तेज़ी से उभर रहा था।

बसंतलाल की समझ में सिर्फ इतना आया कि लगता है, अमोलकचंद ठेकेदार से लड़ आई है। सान्त्वना देने के से संकल्प के साथ, वह रामकली के निकट चला आया। रामकली के मुंह पर बिखर आए बालों को उसने पीछे कर दिया और अपनी सम्पूर्ण आत्मीयता हाथ की हथेली पर से उड़ेलता हुआ-सा बोला, "ये रामकली, पागल हो गई है क्या रे! चैन से बैठ, कोई दुनिया थोड़े डूबी जा रही है। इस छुटकी को तो जाने क्यों कल से कुछ बुखार-सा हो आया है। निगम बाबू यही बतला रहे थे कि मौसम बदला है, फ्लूजा हो गया

है। रात-भर खांसती भी रही है।"

रामकली को ऐसा लगा, वसंतलाल ने उसे आकाश से गिरते में संभाल लिया है। वह, छुटकी को छोड़ अपने ऊपर झुके वसंतलाल की छाती से लग गई। अपना सारा सामर्थ्य लगाकर रामकली सिर्फ इतना ही बोली, "वसंता, इस वक्त हमसे कुछ न पूछना। इस वक्त हम जानवर की तरह डरे हुए हैं।"

आवाज दबाकर, अपनी बात कहते हुए भी रामकली को यही लगता रहा कि उसकी चीख बस्ती में दूर-दूर तक फैल गई होगी।

१०

स्कूल जाने से पहले तक बच्चे पालतू खरगोशों के से चौकन्नेपन में दिखाई देते रहे थे और रामकली ने लगातार यही अनुभव किया था कि अक्सर अचानक ही, दोनों बच्चे, उसकी ओर कनखियों से देखते हैं।

रामकली चाहती थी कि हाथ बटाए, लेकिन एक तरह की अबूझ परास्तता-सी उस पर निरंतर हावी रही और वह असाध्य लम्बी रुग्णता में से उबरती हुई औरत की तरह सिर्फ चुपचाप देखती रह गई। वसंता ने उन्हें चाय के साथ नाश्ता करा देने के अलावा, रतन के लिए प्लास्टिक के छोटे-से 'टिफिन-बक्स' में आलू-पराठा रख दिया। रामकली ने छिपी आंख से देखा, टिफिन-बक्स' मटमैलापन लिए था। वह कहना चाहती थी कि थोड़ी जलेबियां भी रख दे वसंतलाल, लेकिन जाने क्यों कहा नहीं गया।

"छुटकी तो कभी जाती है, कभी नहीं। फूलो ताई के पास छोड़ जाता हूं। बताती थी कि आजकल फूलों का दोना लगाना सीख गई है। गिराक आते हैं, तो सयानियों की सी बातें करती है।"

बच्चों के जा चुकने के बाद अपने इर्द-गिर्द आंधी के झोंकों की तरह दबाव डालती हुई रामकली की उपस्थिति में वसतलाल को लगातार यही महसूस हो रहा था कि ये बच्चे ही हैं, जो रामकली को मेंड की तरह रोके पड़े हैं। रात को बहुओं के से तेवर में डेरे पर वापस लौटी रामकली सुबह-सुबह लकड़बग्घों की खदेड़ी हुई-सी यहां पहुंची है, तो सामान्य स्थिति तो नहीं ही रही होगी।

वसंतलाल अपनी गहरी उत्सुकता और बेचैनी से उबरने के लिए अब

वार्तालाप की शुरूआत कर लेना चाहता था, ताकि वास्तविकता को पूरी तौर पर जाना जा सके। रामकली जितने तड़के, और जिस तरह की बदहवासी में पहुंची, इतना अनुमान तो उसने लगाया था कि आपस में द्वंद्व हुआ होगा, लेकिन रामकली कितने वक्त के लिए, और किस तरह के फैसले के साथ यहां आई है···यह जानना अभी बाकी ही था।

दूध हालांकि बहुत थोड़ा बचा था, लेकिन फिर भी बसतलाल ने केतली में पानी चढ़ा दिया· "इतनी जल्दी तो तू चा पी के कहा आई होगी ? दूध कम है, काम चला लेते हैं। बाद में लेता आऊंगा पाव-आध सेर। जो तू रात ठीक से सोई ना हो, तो चा पी के सो जाना। तब तक मैं जरा प्रेस तक होता आऊगा। कहने को तो राय साहब कहते थे कि बच्चों की किताबों के 'सब-मिशन' का सीज़न चल रहा है, फिर भी छुट्टी करवा लूंगा और लौटते में कचेरी से मीट भी लेता आऊंगा। ममाला बाजार में पिसा हुआ मिल जावेगा। बच्चों को कल रात का मीट बड़ा अच्छा लगा था। अभी खतम करके गए हैं। इस्कूल के लिए तो मैंने आलू उबाल दिए थे। हमें कुछ तो माल्टे का और कुछ तेरा, नशा रहा—मीट खाए, न खाए को कुछ याद ही ना रह गई ससुरी।"

अपने अंतिम शब्द को दांतों में फंसे तिनके की तरह खींचते हुए, बसतलाल ने कुछ ज़ोर से ठहाका लगाने की कोशिश की तो लगा कि किसी रहस्यलोक की सृष्टि की तरह चारपाई पर पड़ी रामकली और उसके बीच का अजनबी-पन और ज्यादा घना हो गया है।

सीधे-सीधे पूछ लेने का उसे साहस नहीं हो रहा था कि कहीं कोई और बात न निकल आए। रामकली, बच्चों के चले जाने के बाद भी, सिर्फ उकड़ू बैठकर रह गई थी। घुटनों के ऊपर टिके हुए उसके सिर को ऊपर उठाने की उतावली बरतना बसंतलाल को अच्छा नहीं लगा। दोनो कुहनियां घुटनों पर धार लेने में बाईं ओर का ब्लाउज ऊपर खिंच गया था। बसतलाल बच्चों के से कौतूहल से देखता रहा। हालांकि रामकली की बदहवासी के रहस्य से वह बेखबर था, और सबसे पहले यही जान लेना चाहता था कि ऐसा क्या घटित हो गया है उसके साथ—फिर भी उसे अनायास ही याद आता चला गया कि रामकली को उसके जिस्म में पा सकने की हविश कल रात-भर कैसे उसके सारे अस्तित्व में मंडराती रही थी। जैसे कोई मधुमक्खी कमरे से बाहर निकल न पाने की बेचैनी में चक्कर काट रही हो, बीते हुए दिनों की एक-एक स्मृति आकार ग्रहण करती जाती थी।

वसंतलाल पूरी निश्चितता में था, क्योंकि वह रामकली अपना सिर घुटनों में दिए बैठी थी, जैसे भाषा को अपने भीतर से पानी में डूबे हुए सिक्कों की तरह बाहर निकालना चाहती हो। वह कनखियों से बच्चों के से भोलेपन में देखता हुआ, स्मरण करने की कोशिश में था कि जब पहली-पहली बार रामकली उसके लिए औरत हुई थी, तब की रामकली आज कहीं अचानक दिख जाए, तो पहचाना भी जा सकेगा या नहीं। तभी रामकली ने, सिर ज्यादा ऊपर उठाए बिना ही, धीमे से अपना बायां हाथ उठाया और असावधानी में ऊपर खिंचे हुए ब्लाउज को ठीक कर लिया।

वसंतलाल कुछ खिसिया-सा गया। रामकली अगर विनोद में डांट देती, तो शायद, वह इतना न खिसियाता। रामकली ने जिस तरह की संजीदगी में से अपने-आपको समेटा, वसंतलाल को डर लगा कि कहीं रामकली यों न सोच रही हो कि उसकी विपदा से वसंतलाल को कोई सरोकार नहीं।

इसी असमंजस में एकाएक ही वह पूछ बैठा, "क्यों, क्या बात हो गई, रामकली? कल रात को वापस लौटी, तड़के में वापस आई हो—कहीं अमोलक-चंद ठेकेदार......"

"मर गया है ससुर! मिट्टी हो गया है!"—आवाज को दबाकर, लेकिन अपने पूरे आवेश में से रामकली ने कहा, तो वसंतलाल को लगा कि वाक्य को अधूरा छोड़ना व्यर्थ नहीं गया।

रामकली की ओर पीठ करता हुआ, वसंतलाल सिगड़ी की ओर घूम गया। बोला, "क्यों, कल तेरे वापस पहुंचने से पहले ही लौट आया था क्या? अच्छा हुआ, हम लोग सनीमा देखने नहीं निकल गए।"

रामकली ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो फिर वसंता ही बोला, जैसे कमरे की दीवारों को सम्बोधित करना चाहता हो "यों तो मैं कहता ही आया हूं, रामकली, ये घर गया-बीता जैसा भी है—हम लोगों से पहले तेरा है।...लेकिन आखिर ज़िंदगी-भर लड़ाका बने रहने से भी बात बनेगी नहीं, राम-कली! तू कहेगी, आई हूं, तो चाचा-ताऊ की सी नसीहतें देने बैठ गया है वसंता—मेरा कहना सिर्फ इतना है कि औरत को आखिर-आखिर ऐसा ठिकाना बना ही लेना चाहिए, जहां वो लड़ने-झगड़ने के बाद भी रह सके।"

वसंतलाल ने अपने कहने की तल्खी को अनुभव करते ही, रामकली की ओर मुंह घुमाना चाहा, ताकि कदाचित् वह नाराज़ होने लगे, तो उसके रोष को संभाल लेने की कोशिश कर सके।......लेकिन जब तक में वह केतली में

चाय पत्ती छोड़कर, गर्दन पीछे घुमाता—रामकली कब अचानक चारपाई पर से उतरकर, उसकी पीठ से सगकर चढ़ गई, वह सिर्फ अनुभव ही कर सका।

रामकली सामान्य औपचारिकता की सी मुद्रा में नहीं, बल्कि अपने-आपको जैसे विलीन करती हुई-सी बसंतलाल की पीठ से लग गई थी। वह, खास तौर पर अपनी यायावरी के पिछले दो वर्षों में, इस कला में तो निष्णात हो ही चुकी थी कि किन्हीं खास परिस्थितियों में औरतें जितना—और जिस तरह से—अपने जिस्म से कह सकती हैं, जबान से नहीं।

बसंतलाल रामकली के लंगर खोलकर, धार में छोड़ दी गई नाव जैसे जिस्म के भराव को चुपचाप अपनी पीठ पर वहन करता ही रह गया। चुपचाप चाय को खौलता हुआ देखने की प्रतीक्षा करने के अलावा, इन कुछ क्षणों में, जैसे और कुछ करने को उसके पास रह नहीं गया था।

रामकली ने धीरे से अपनी बाईं बांह को उसके बायें कंधे पर से नीचे गिराया और उसकी बण्डी के भीतर अंगुलियां फैलाती हुई, दायें कंधे पर सिर टिका दिया, "बसंता, हम आज हमेशा-हमेशा के लिए तुम्हारे पास लौट आई हैं।"

रामकली ने यह वाक्य ऐसे कहा था, जैसे किसी ऊंचे पर्वत पर से नीचे झांकती हुई पुकार लगा रही हो। पिछले दो वर्षों में जितनी दूर तक भी वह जा सकी होगी—रामकली का यह इस वक्त का स्वर बसंतलाल को एक लम्बी, दिशाविहीन उड़ान में से घोंसले तक वापस लौट आए पक्षी का सा स्वर लगा। शायद, सारी-सारी आश्वस्तियों के बावजूद का कोई डर था, जिससे पार उतर आने की सावधानी में रामकली यों अपने रोम-रोम में एकाग्र हो आई थी। बसंतलाल अपने किंचित् भीतर को धंस चुके सीने पर और लगभग पक चुके बालों में मौसम के फूलों की तरह खिल आए जिस्म वाली रामकली की मांसल अंगुलियों के स्पर्श को स्तंभित-सा सिर्फ अनुभव ही करता रह गया। कब वह किसी गहरे स्वप्न में डूबता हुआ-सा उठा, कब उसने सांकल चढ़ाई और कब वह रामकली को अपनी बांहों में भरता हुआ-सा चारपाई पर ले आया—और फिर कब उसके लिए यह सारा संसार घने कोहरे में डूबी बस्ती की तरह अंतर्धान हो गया, इसको अलग से अनुभव कर सकने का चैतन्य उसमें रहा नहीं।

99

घर से चलते वक्त रामकली ने ज़िम्मेदार गृहणी की सी हिदायत के साथ झोला हाथ में पकड़ाया था कि 'देखो, इस वक्त कुछ सस्ती और अच्छी-सी सब्जी लेते आना। चाहे आलू-मटर और थोड़े टमाटर लेते आना। परसों शाम लोकनाथ तक चली आई थी सब्जी लेने, मटर-टमाटर रुपया किलो से ज़्यादा नहीं थे। मीट को तो आग लग गई। कहां तीन-चार रुपये थे, दस रुपये किलो पहुंच गया। कल रात तो मीट बना ही था। बोतल भी आई थी। इतना खर्चा कहां से पूरा होगा ?'

बसंतलाल ने अनुभव किया था कि इस रामकली के कहने में बहुत फर्क है। रामकली ने जिस गहरी आत्मीयता में से पैसे ज़्यादा खर्च न करने की हिदायत दी थी, बसंतलाल ने उसी वक्त निश्चय कर लिया था कि आज के दिन तो कंजूसी नहीं ही करनी है।

राय साहब के प्रेस में मैनेजर शुक्ला से बसंतलाल ने चालीस रुपये अग्रिम रूप से मांगे और रायसाहब से फोन पर पूछ लेने के बाद, दे दिए गए रुपये सहेजकर, बसंतलाल चलने लगा, तो शुक्ला ने यों ही पूछ लिया, "क्यों, बसंतलाल, किसी बच्चे का जन्मदिन पड़ा है क्या ?"

"नहीं हो, शुक्ला साहब ! बस, ऐसे ही।" कहते हुए, बसंतलाल फिर से रामकली के इतने आकस्मिक रूप से हमेशा-हमेशा के लिए लौट आने की स्मृति के कोहरे में खो गया। उसका मन हुआ कि थोड़ी देर रुककर, रामकली की वापसी के बारे में शुक्ला को बताए। सिर्फ वापसी के बारे में ही क्यों, वो सारी बातें बताए कि जब घरवाली के रूप में रामकली को देखा, तब वह कैसी थी। कैसे अपनी नादानी में बहक गई और आखिर-आखिर कैसे उसकी भलमनसाहत काम आई है और रामकली···लेकिन फिर यह अहसास उभर आया कि बांमन दूसरों के बैठ चुकी लुगाई को वापस रख लेने की बात पर -सुर्ती न थूकने लगे।

गोश्त के अलावा, थोड़ा-थोड़ा आलू, प्याज, मटर, धनिया-मिर्च भी खरीद लेने के इरादे से वह कटरा सब्जी-मण्डी की तरफ निकल आया, तो देखा—राय साहब भी कार एक किनारे खड़ी करके, सब्जियां खरीदने में व्यस्त हैं। साथ में पत्नी भी थीं। बसंतलाल ने दूर से ही, झुकते हुए, 'पांय

लोगों बहू जी' कहा, तो राय साहब ने पीछे मुड़कर देखा और पूछ लिया, "क्यों हो, आज अचानक और बेमौके कैसे छुट्टी मार ली ? मुन्ना साहब से 'एडवांस' तो मिल गया था ना ?"

"मिल गया था, साहब ! बड़ी मेहरबानी है। भगवान आप लोगों को सदा सुखी रखेंगे। आप तो जानते हैं, सरकार, बिला कारन नागा करने की हमारी आदत नहीं। कल से हम 'ओभर टैम' में लगके काम निबटावेंगे। अब रिक्शा नहीं चलाएंगे। भूरे के जिम्मे कर दिए हैं। क्या बतावें, सरकार, सब आप लोगों की मिहरबानी का फल है—हमारी रतना की अम्मा लौट आई हैं। आप तो उसे देखी ही हैं, बहू जी ? जब छोटे भैया की शादी हुई रही, तीनेक बरस पहिले—रामकली भी काम करती रही।"

उसके बोल चुकने पर, जिस तरह का सन्नाटा उन दिनों में दिखाई दिया—बसंतलाल को लगा कि बेवकूफी कर बैठा है। रामकली की वापसी की बात इतने अप्रासंगिक और उत्फुल्ल तरीके से नहीं कह डालनी थी। वह थोड़ा खिसिया गया। उसने तय किया कि अपने उत्साह को अब वश में रखेगा। रामकली के लौटने का महत्त्व उसके लिए हो सकता है, दूसरों के लिए क्यों हो ? वह खिसियाहट लिए ही चल पड़ना चाहता था कि रायसाहब की पत्नी ने कहा, "बच्चों के भाग से लौट आई होगी। तेरी फजीहत भी गई। आखिर मर्द कहां तक बच्चों की देख-भाल कर पाता है ! अब फिर से गृहस्थी को उखड़ने न देना।"

रायसाहब और उनकी पत्नी के चेहरों पर आत्मीयतापूर्ण प्रतिक्रिया देखकर, उसकी खिन्नता दूर हो गई और वह हाथ जोड़ता हुआ, काफी दूर तक तेज-तेज कदमों से आगे निकल गया।

सब्जी-गोश्त खरीदकर बसंतलाल लगभग ग्यारह बजे वापस लौटा। नुक्कड़ पर ही उसे भूरे की भाभी मिल गई। हालांकि उसने कुछ कहा नहीं, लेकिन उसके चेहरे और आंखों से ही बसंतलाल ने अनुमान लगा लिया कि यह रामकली से मिल चुकी होगी।

बसंतलाल थोड़ा-सा ठिठके रहने के बाद, अपने-आपको तेज़ी से समेटता हुआ घर की ओर बढ़ा ही था कि भूरे की भाभी ने मुंह में भरी पीक दांतों के सहारे बाहर फेंकने की सी जुगुप्सा में कहा, "हां, भैया, अब हमें काहे पूछोगे !"

बसंतलाल चिहुंककर, रुक गया। भूरे की भाभी के इस जुगुप्सा-भरे

उलाहने से उसे ठीक वैसी ही अनुभूति हुई, जैसे राह चलते में अचानक कोई अवारा कुत्ता पीछे से पांव मे दांत गड़ा दे।

रामकली ने आज जिस तरह उसके अस्तित्व के पोर-पोर को आप्लावित कर देने की सी मुद्रा में समर्पण किया, वह अपने-आपको निरंतर प्रसन्नता के आवेग से भरा हुआ अनुभव कर रहा था। भूरे की भाभी ने ताना मारा, तो उसे यह अपनी प्रसन्नवद्धता में व्याघात लगा।

वह बातचीत से बचता हुआ जरूर निकल जाना चाहता था इस वक्त, लेकिन इससे भूरे की भाभी ने रामकली के पास आ चुकने के कारण अपने प्रति उपेक्षा बरतने की बात पर जिस तरह से कुढ़न व्यक्त की थी, बसंतलाल को यह रुख अत्यन्त अप्रिय लगा। वह पीछे मुड़ा और भूरे की भाभी के ठीक सामने होते हुए, आवाज़ दबाकर बोला, "हिर्स की आग को अपने भीतर दबाए रखना ही अच्छा होता है, हरप्यारी ! इंसान को वक्त देख के चलना होता है। तेरे बच्चे भी अब सयाने होते जा रहे हैं। हर बात समय से ही शोभा देती है।

"अरे, वारे, बसंता ! जोरू के साथ दो वक्तों के सोने में ही तुम्हें इतनी अकिल आ गई कि सांई लोगों की सी फकीरी छांटने लगे तुम तो ! अभी कुल जमा सात-आठ रोज़ पहले तक तो तुम अपनी नाक को मेरी छाती में मुर्गे की कलंगी की ज्यों गड़ाते हुए यों कहते फिरते थे कि 'भूरे की भाभी, तेरी वजह से बच्चों के सयाने हो जाने तक की ज़िंदगी कट जाएगी।" आज अचानक तुमको मेरे बच्चों के सयाने हो चुकने का इलहाम कैसे हो गया भला ? और मैंने तो कुछ तुमसे कहा भी नहीं कि जोरू कितनों के होके लौट आई। अरे, नहीं हमसे पहले का सा व्योहार करोगे, तो हमारी जूती से। हम ही बहुत बड़ी उल्लू की पट्ठी थीं, भैया, जो तुम्हारा और तुम्हारे बच्चों का, सभी का पूरा करती रहीं।"

भूरे की भाभी से इस तरह का साबका पड़ने की पूर्व-कल्पना बसंतलाल में थी नहीं। रामकली फिर से उसकी ज़िंदगी में वापस लौटेगी, यह आशा लगाए रहना तो स्वप्न में देखी हुई नदी में स्नान करने से आत्मविभ्रम के अतिरिक्त और कुछ होता नहीं। भूरे की भाभी से उसका किस तरह का संबंध रहा है, उसे रामकली कैसे लगी, यह ठीक-ठीक अनुमान लगाना अभी कठिन है। अलबत्ता वह भी उसे नैतिक या सामाजिक रूप से दबा पाने की स्थिति में तो कतई नहीं, इतना बसंतलाल जानता है। उसने बच्चों की

अगर देखभाल की ओर वसंतलाल की स्त्रीवंचना में बचाए रखा, तो आखिर वसंतलाल भी तो अपनी कमाई का एक अच्छा-खासा उस पर खर्च करता रहा है ? उसके बच्चों के लिए खाना बनाने आई है, तो अपने बच्चों को भी खिलाती ले गई है। शक्ल-सूरत कुछ बच्छी होती या जिस्म में ही जवान औरतों का सा भराव होता, तो वसंतलाल भी कुछ अहसान या दबाव महसूस करता कि चलो, बिना छप्पर भी हो गई है, तो दस-बीस दूसरों को किनारे काटके, उसके नजदीक आई है। कहां रामकली और कहां वह। रामकली को अपनी मर्यादा से भटक जाना भी स्वाभाविक लगता है—भूरे की भाभी के सामने तो अपने विधवा होने को उस स्तर पर काटने की कोई समस्या थी नहीं, जहां उम्र का एक लम्बा-सा फासला औरत को अपने विधवा होने और जवान होने के बीच तय करना पड़ता है।

वसंतलाल की उम्र मैंतालिस-अड़तालिस की होने को आई है, तो इसकी भी चालीस-बयालीस से कम क्या होगी ! ऊपर की पात के दो बीच के दांत भी गिर चुके हैं।

वसंतलाल जैसे भूरे की भाभी को अपने-आप से अलग कर देने वाली दीवार का सहारा खोजता हुआ-सा खड़ा था। वह उसके द्वारा पैनी नजर से देखे जाने की स्थिति से बाहर छूट आना चाहता था। किंकर्तव्यविमूढ़ता में ही सही, भूरे की भाभी को ओर गौर से देखते रहने के इन कुछ क्षणों में वसंतलाल को लगा, इस औरत के जिस्म और इसके इस वक्त के देखने में छुरी की काफी पुरानी पड़ चुकी बेंट और ताजा-ताजा सान चढ़ाई गई धार जितना फर्क है। वह इस वक्त काफी झीनी पड़ चुकी-सी लम्बी कुरती पहने थी और उसके ढल चुके स्तनों के अगले हिस्से नाभि के लगभग पास तक लटक आए थे। वसंतलाल को किसी बूढ़ी गाय को देखने की सी अनुभूति होने लगी।…और अपनी इस तरह की अनुभूति पर आकर ही उसने अपने-आपको कसूरवार की जगह पर देखने की आवश्यकता अनुभव की कि इस औरत का जी दुखाने से कोई लाभ नहीं।

वह कुछ कहती कि वसंतलाल थोड़ा-सा और समीप खिसक आया। चारों तरफ सावधानी से देखकर, बरसात में भीगे पक्षी की तरह अपने-आपमें सिमटता हुआ-सा बोला, "तू और हम कौन हैं, भूरे की भाभी ! सारा खेल खेलने वाला तो वह ऊपर वाला है। इंसान को तो अपने वक्त और रास्ते को देखते हुए, जहां तक हो सके, अपनी समझ से सही ही चलते जाने की कोशिश

तू गलत समझ...

रनी होती है।"

थोड़ा-सा रुककर, वसंतलाल ने और ज़्यादा संजीदगी के साथ, "तुनक क चलने की तो न अब तेरी उमर रही न मेरी। अब यही देख ले कि जहां तक मेरा सवाल है, रामकली तो तू जानती है, बहुत पहले ही घर से निकल पड़ी थी—लेकिन तुझसे बोलना कब शुरू किया मैंने ? अभी सिर्फ चंद महीने ही पहले तो ? जब रतना और श्यामा को इस्कूल में भरती करवाने की खातिर नसबंदी करवा लेनी पड़ी ? आती-जाती तो रामकली के जमाने से ही रही थी तू। रामकली के जाने के बाद तो अक्सर बच्चों को तूने ही संभाल भी लिया।…मुझसे भी तेरा हंसी-ठट्ठा बढ़ता चला गया था।…मगर मेरे मन में यही रहा कि कहीं कुछ गलत-सलत हो गया, तो मेरा क्या, मर्द की जात में गिनकर छोड़ दिया जाऊंगा—तेरा ज़िंदगी-भर का बोझ हो जाता।… और मैं तो अब भी तुझसे यही कहूंगा कि घर का दरवाज़ा तो तेरा देखा हुआ ही है। मेरे बर्ताव में किसी तरह की कमनियती देखेगी, तब कहना कि वसंता, तू सही इंसान नहीं।…आखिर रामकली जो जंगल गई गैया-सी लौट आई है, तो कुछ मेरे गुन देखकर ही तो ना ? तेरा गोपाल दो-तीन साल और बड़ा हो जाए, तो मेरे साथ लगा देना—राय साहब के प्रेस में लगवा दूंगा। अक्षर-ज्ञान तो उसे है ही, कम्पोज़िंग सीख लेगा।…"

"गुठलियों के पेड़ में होते में वक्त लगता है, वसंता!"—हरप्यारी का स्वर एकाएक ही विषाद-भरा और नम हो आया। वह अब चल पड़ने की तैयारी में हो गई थी। किंचित् लाचारी की सी मुद्रा में वह मुस्करा पड़ी, "बाप की जगह पर तो तुम हो ही। फिकिर जी में रखे रहना। हमारी तो आजकल तबीयत भी ठीक-ठाक नहीं चल रही। औरतों का क्या रहता है जिनगी में—बस, बच्चों की लावारिसी का डर लगा रहता है।"

अपनी बात समाप्त करके वह तेज़ी से पलटने को थी कि वसंतलाल एक पांच रुपये का नोट उसकी तरफ बढ़ा दिया, "उस दिन तुम कहती कि अभी राशन नहीं खरीदा। रिक्शा तो अब पूरी तरह से तुम्हारे भूरे ही पकड़ा दिया है हमने। जबसे नसबंदी करा ली, हिम्मत कुछ हलकान गई। अब तो सोचते हैं, सिर्फ प्रेस का ही काम पकड़ लें। रिक्शे में यही कि ज़रूरत कोई नहीं अटकती थी। सवारी उतारी, पैसा लिया। प्रेस के का पैसा पहले उठ जाता है, बाद में मांगते नहीं बनता।…तुम अब भू शादी का कुछ जुगाड़ लगाओ। लड़का वह मेरा भी देखा-परख

ईमानदार, नेक और मिहनती है। यों अपने जी में डर न रखे रहो कि जोरू वाला हो जाएगा, तो तुम लोगों से कन्नी काट लेगा।···और तुमसे जो मैंने कहा था कि चौक चली चलो एक दिन, तो चादी के दांत लगवा दें। उमिर की मार भी समुरी गरीबों पर ही ज्यादा गिरती है। राय साहब की घरवाली है ना, जिनके प्रेस में काम करता हूं, चौवन-पचपन से कम की तो क्या होंगी—अभी-अभी कटरा सब्जी-मण्डी में मिली थीं, और रामकली की वापसी की खबर सुनकर हमी थीं, तो तुम यों समझो कि दांत अभी भी क्यारियों के से लगते हैं।"

कहते-कहते ही बसंतलाल ने अनुभव कर लिया कि राय साहब की घरवाली का जिक्र उसने कहीं न कहीं अपने भीतर भर गए दबाव में से किया है, ताकि भूरे की भाभी पर यह प्रभाव पड़े कि रामकली की वापसी पर रायसाहब की घरवाली जैसी सम्भ्रान्त औरत की तक कोई बुरी प्रतिक्रिया नहीं। उसने साथ-साथ यह भी अनुभव किया कि 'रामकली की वापसी पर रायसाहब की घरवाली हमी थीं' की जगह 'खुश हुई थीं' कहना चाहिए था।

अपने-आपको संभालता हुआ-सा बसंतलाल बोला, "अब तू यों जान कि तू तो, शायद है, कल राजापुर अपने मायके चली गई थी ना? भूरे ने तुझे बताया ही होगा कि रामकली को कल शाम भूरे ही मेरे साथ चौक से यहां लेता आया था।······मगर तुम यों जानो कि वह कल शाम की आई हुई तो यही कोई नौ-साढ़े नौ बजे ही वापस लौट गई। बस, यों आई थी, जैसे मेहमानदारी पर आई हो।······कल मीट बहुत बढ़िया बना था, बच्चों के हिस्से का रखा पड़ा था। सुबह उन्हें खिला रहा था कि देखता क्या हूं, रामकली है।··मीट तो, ये देख, इस वक्त भी लेता जा रहा हूं। इतनी वक्त बना, तो दुपहर बाद किसी वक्त आके देख लेना। रामकली से बातचीत भी करती जाएगी, दो बोटी भी खाते जाना। मैं तो यही कहूंगा, भूरे की भाभी, कि आदमी को दूर *तक का वास्ता और* रास्ता देख के चलना होता है। बेकार की हिर्स और तुकमिज़ाजी से जिंदगी संभाल पर आती नहीं। तुम कुछ दवा-दारू भी कर रही हो या नहीं?"

भूरे की भाभी ने, उसके प्रश्न का कोई उत्तर न देकर, चुपचाप अपना हाथ आगे निकाल लिया। बसंतलाल के लिए, देखते हुए भी, यह विश्वास करना कठिन हो गया कि अभी हाल-हाल तक इन्हीं हाथों में उसे अपने पुरुष

होने की प्रतीति हुआ करती थी।

हालांकि बात तो अपनी वसंतलाल हर बार निहायत कम शब्दों में ही कह डालना चाहता था, लेकिन नकारते-नकारते भी भूरे की भाभी के साथ बिताए हुए क्षणों का दबाव इतना बन जाता था कि वह सफाई देने की सी सावधानता में उलझा रह जाए।

नोट उसके हाथ से लेकर, भूरे की भाभी अपने घर की तरफ बढ़ गई, तो उसे मधुमक्खियों के बीच से निकल आने की सी राहत अनुभव हुई। उसने एक बार फिर अपने चारों ओर देखा। बस्ती के इस हिस्से में, इस वक्त, ज़्यादा चहल-पहल नहीं थी। इस बीच जो छिटपुट लोग गुज़र भी गए आस-पास से, उनकी आंखों का दबाव उसे झेलना नहीं पड़ा।

घर अब बिलकुल थोड़े से फासले पर था। वसंतलाल ने देखना चाहा कि क्या रामकली किसी काम से बाहर निकली होगी। कुछ क्षण अपनी जगह पर ठिठके रहकर, वसंतलाल देखता रहा, जैसे आंखों से ओझल हो गए किसी पशु को खोज रहा हो, लेकिन वह दिखी नहीं।

हो सकता है, अभी वह सोई ही हो। हालांकि पूछना भले ही छूट गया, लगता तो अब भी यही है कि भूरे की भाभी ने रामकली की वापसी को सिर्फ सुना-भर नहीं है, बल्कि टोह भी लिया है। आते वक्त तो चाय भी आखिर वह खुद बनाकर दे आया था और कहता आया था कि 'तुम रात-भर की जागी हो, रामकली! आराम से सो लेना। मैं सब्जी लेता लौटूंगा, तो जगा लूंगा। भीतर से सांकल चढ़ा लेना, कहीं जान-पहचान वालियों आके बतियाने न बैठ जाएं।'

ग्यारह बरसों की गृहस्थी में तो न रामकली न कभी यों समुद्र में गिरती हुई नदी हुई थी और न उसके चेहरे और उसकी आंखों में वसंतलाल को अपना वैसा प्रतिबिंब दिखाई दिया था। हालांकि लगभग दो वर्षों के बाद वापस लौटी रामकली को लेकर कहने-सुनने वालों की थुक्का-फजीहत कम तो झेलनी नहीं होगी, लेकिन अपने भीतर-भीतर वसंतलाल यही अनुभव करता रहा है कि रामकली मानता मानने के बाद की देवी-सी वापस आई है।

घर के बिल्कुल करीब पहुंचकर उसने देखा—दरवाज़े का एक पल्ला खुला था और रामकली जमीन पर बैठी श्यामकली के फ्राक की उधड़न ठीक कर रही थी। थैला एक कोने में रखते हुए, वसंतलाल ने एक नज़र चारों ओर डाली। सब कुछ अपनी सीमा में व्यवस्थित और रामकली के हाथों के

स्पर्श से भरा हुआ प्रतीत हो रहा था। सिगड़ी रखने की जगह निहायत सुघरे ढंग में लिपी हुई थी और फर्श पर झाड़ू ऐसे दिया गया था कि बोलता-सा लग रहा था।

बसंतलाल ने गोश्त को अलग जस्ते की थाली में निकाल लिया, तो रामकली बोली, "इतनी वक्त तो मीट रहने दो, बसंता! हड़बड़-हड़बड़ में बनाया गोश्त मजा नहीं देता। आलू-मटर-टमाटर की रसेदार सब्जी बना लेते हैं। बच्चे भी इस्कूल से लौटते ही होंगे। गोश्त शाम की वक्त बन जाएगा।"

"अब जैसा तुम्हें ठीक लगे, करो। हमें तो एक प्याली चा पहले पिला दो, तो मिहरबानी। इस्टोव ससुरा खराब हुआ पड़ा है। ये बुरादे की सिगड़ी किफायती तो बहुत होती है, रामकली, मगर भरने-सुलगाने में बड़ा वक्त लगता है।"

रामकली ने सिगड़ी बुरादा भरके तैयार रखी थी। बसंतलाल कागज की जिस थैली में चावल लाया था, खाली करके, चावल देगची में डाल दिए रामकली ने और कागज से सिगड़ी जलाने में जुट गई, "तुम्हारे लिए चा बनाकर, चावल चढ़ा दूंगी। बच्चों का इस्कूल कै बजे छूटता है?"

पूछने के साथ ही रामकली ने अपनी बाईं कलाई में बंधी घड़ी की ओर देखा, तो एक क्षण को बसंतलाल को अपनी अभावग्रस्तता का अहसास हो आया। बोला, "एक अलारम-घड़ी ले आने की कब से सोच रहा था। कभी-कभी बड़का ससुर हड़कम्प मचा देता है कि तड़के जगा दिया करो। कल सेविंग एकोन्ट से…"

"अब हम जगा दिया करेंगे।"—रामकली बात काटती हुई बोल उठी।

"अलारम घड़ी में एक गुन ये जरूर होता है, जितने बजे का लगा दो, तड़ाक से घण्टी देता है।"—बसंतलाल ने तर्क तो दिया, लेकिन भीतर से उसका उत्साह फीका पड़ चुका था।

रामकली पट्टे पर ठीक से बैठती हुई, बसंतलाल की तरफ घूम गई। मुस्कराती हुई बोली, "गुन तो तुम में भी बहुतेरे हैं, बसंता! सुनो, तुम मर्दों की सिर्फ दो आखें होती हैं, हम औरतों के रोम-रोम में आख-कान होते हैं। ज्यादा शाहखर्ची दिखाने की तुम्हें भला क्या जरूरत है? तुम्हें क्या किसी दूसरे की जोरू पटानी है?"

जिस तरह से रामकली हंसी, वह कुछ हतप्रभ-सा हो गया।

रामकली ही बोली, "इतना इतमीनान रखो, जो रामकली गई थी, वह रामकली वापस नहीं लौटी है। वो ससुर गुण्डा-आवारागिर्द अमोलकचंद ठेकेदार तो तुम्हारे पांवों की धूल भी नहीं ना। पहले हम नासमझ थीं एक। दूसरे तुमने छुट्टा जानवर की तरह छोड़ दिया कि जा ससुरी, जहां मूं मारना हो, मारो।...ये ना समझो कि अपनी नामर्जाद जिंदगी का मलाल हमें ना था। पांव में गू लगा है, या गोबर, इतना तो इंसान अंधेरे में भी जान ही जाता है, बसंता! हां, अलबत्ता वक्त जरूर लग गया हमें यह जानने में कि नहीं, रामकली, जिस्म की आग से कलेजे की ठडक बड़ी चीज होती है। सुनो, बच्चे थोड़ी-बहुत मिर्चा खा लेते हैं ना? बिना तीखे की तो आलू-मटर की सब्जी मीठी-मीठी-सी लगती है।"

रामकली अपने सनातन विनोदी स्वभाव में चुहल-सी करती-करती, धीरे-धीरे जिस तरह की संजीदगी में वापस चली गई, बसंतलाल उसे सिर्फ देखता रहा।

रामकली ने चाय बनाकर, प्याली उसकी ओर बढ़ाई, तो बसंतलाल ने देखा—बड़ी-सी लाल बिंदिया माथे पर रचाई है और मांग में सिंदूर की काफी गहरी लकीर खींच रखी है। जब वह रामकली को चारपाई पर सोया ही छोड़ता गया था, तब तक वह बासी मुंह ही थी। इस वक्त जिस तरह की ताजगी में है, लगता है, नहाई होगी।

रामकली इस वक्त और भी कम-उम्र लग रही थी। बसंतलाल ने आत्मालाप की सी मुद्रा में धीमें शब्दों में कहा—"तेरे-मेरे बीच उम्र का इतना फासला ना रहा होता, रामकली, तो हम लोगों की गिरस्थी में दरार ना पड़ी होती।"

"जब-जब तुम यों कहा करोगे, बसंता, इसका मतलब यही होगा ना कि अपनी शरारत में तुमने बात को सीधे ना कहके, यों घुमाके कह दिया कि मतलब आखिर-आखिर यही निकला—'रामकली, तुमसे अपनी जवानी की अगन बर्दाश्त ना हुई!' हम तो अब सब-कुछ को संतोषी माता का संजोग मान के चलना चाहती हैं, बसंता! अपना जी बेकार में तुम भी हलकान ना किया करो। औरत कम उमिर की हो, या ज्यादा, रिश्ता उसका सिर्फ जोरू का ही बनता है।"

संतोषी माता का नाम लेते वक्त, अचानक रामकली को हरगुन पंडित की स्मृति हो आई। वह सोच रही थी कि प्रसंग निकालकर पूछेगी कि

हरगुन पंडित अयोध्या से वापस लौटा भी, या नहीं—शायद, कहने के लिए और कुछ न सूझ पाने के कारण—बसंतलाल ने एकाएक ही पूछ लिया कि—"क्यों, रामकली, भूरे की भौजाई तो ना आई थी इस तरफ ?"

यह देखकर बसंतलाल भौचक्का-सा रह गया कि निहायत संजीदगी में वापस लौट चुकी-सी रामकली का पूरा चेहरा एकाएक ही शरारत से भर गया है, 'क्यों, वो क्या इस तरफ तुम्हारी उम्मीद में आई थी ?"

एक क्षण को बसंतलाल की स्मृति में पांच का नोट पकड़कर, कंकाल की तरह आगे बढ़ती हरप्यारी का पूरा ढांचा कौंध गया। उसमें कुछ तर्क गढ़ते नहीं बना, सिर्फ यही बोला, "रास्ते में मिल गई थी। हम समझे कि शायद है, इस तरफ होती गई हो। तुम्हारी गैरहाजिरी में बच्चों को—खास तौर पर तो छुटकी श्यामकली को यही कभी-कभार संभाल लेती रही, रामकली ! अब तुम्हें क्या बतावें, फूलो ताई बड़ा मजाक उड़ाती थी कि 'बसंता रे, ये हरामिन तो बुढ़ियों का भी परहेज नहीं करती।' आदत तुम ही खराब कर गई थीं। तुम्हें तो दूध भी खूब होता था। ''

"क्यों, भूरे की भौजाई से ना फूटा दूध ?"—रामकली जैसे शरारत करने पर तुल गई थी। आंखों को उसके चेहरे पर गड़ाती हुई-सी बोली, "शायद है, छुटकी के इस्कूल से छुट्टी का वक्त जान के दूध पिलाने आई हो ? तुमसे क्या बताती थो ? हम तो उस वक्त नहा रही थी, यही कहके टरका दिया कि संझा की वक्त आना, अभी बसंता लौटे नहीं।"

इस बार रामकली से अपनी खिलखिलाहट दबाई नहीं गई।

बसंतलाल जानता है, मसखरापन तो रामकली के रोम-रोम में भरा रहा है हमेशा। फर्क सिर्फ इतना है, पहले बसंतलाल के लिए व्यंग और तनाव ज्यादा था, हंसना, खिलखिलाना दूसरों के बीच।

कुछ तय नहीं हो पाया भीतर कि इस प्रसंग में अभी रामकली से किस रुख में बात की जाए, तो बोला, 'देखने-सुनने-बतियाने की तो यों ही गंवार-सी है भूरे की भौजाई, मगर दिल की नेक औरत है। आजकल तो बेचारी अरसे से बीमार भी चली आ रही है। शायद है, कौन जानता है बच्चे भी ज्यादा दिन या नहीं।"

कह तो गया, लेकिन अपनी हकीकत छिपाने के लिए उसके बारे में इस तरह की अशुभ बात नहीं ही कहनी चाहिए थी, इस बात के अहसास में बसंतलाल सीधे-सीधे यह कहने को हो आया कि "देखो, जहां तक हमारा सवाल

है—हम माने लेते हैं कि गू हमारे पांवों से भी लगा है।"…लेकिन तब तक में रामकली यह कहते हुए सिगड़ी के पास से उठ खड़ी हुई कि "गोश्त की थलिया आलमारी में रख दें। बिल्ला ससुर आता रहता है।"

वसंतलाल ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा पाया कि रामकली के कहने में किसी प्रकार की सांकेतिकता तो नहीं। उसने सिर्फ इतना अनुभव किया कि इस मुद्दे पर सोचने का वक्त उसे ले लेना चाहिए। एकाएक ही उसने तय किया कि क्यों न रामकली के खाना बना लेने तक कहीं घूम-फिर आए।

रामकली गोश्त छोटी, जालीदार आलमारी में बंद करके लौटी ही थी कि वसंतलाल यह कहता हुआ उठ खड़ा हुआ, "तुम भी चा पी लेतीं।"

"ना, बिना दूध की चा हमें ना अच्छी लगती। तुम क्या कहीं बाहर जाओगे?"

एक लम्बी-सी 'हूं' भरता, वसंतलाल दरवाजे से बाहर निकल आया और बाहर से ही बोला, "तुम खाना बना लेना, रामकली! हम लौटेंगे जल्दी ही।"

१२

दोपहर के खाने के बाद वसंतलाल फिर बाहर निकल गया था। रामकली बच्चों के गिने-चुने कपड़ों और उनकी किताब-कापियों को छोटी-सी अलमारी में करीने से लगा रही थी और उसे निरंतर यही अनुभूति हो रही थी कि वह दोबारा एक अपरिचित संसार में जी रही है। दोनों बच्चे खेलने-कूदने निकल गए थे। पड़ोस के जो बच्चे श्यामकली और रामरतन को बुलाने दरवाजे के बाहर इकट्ठे हुए थे उन्होंने जरूर रामकली को बहुत कौतूहल-भरी आंखों से देखा था, लेकिन खुद उसके बच्चों की आंखों में अब कल शाम, या आज सुबह का सा अजनबीपन रह नहीं गया। खास तौर पर दोपहर को जब दोनों बच्चे स्कूल से लौटे थे, बाहर प्रतीक्षा में खड़ी रामकली को एक बार देखा उन्होंने जरूर था, लेकिन फिर जिस तरह दोनों ही चुपचाप कमरे की तरफ बढ़ आए थे, उससे स्पष्ट था कि उन्हें रामकली की वापसी का इतमीनान हो गया है।

खाना खिलाते वक्त रामकली ने दोनों बच्चों को बहुत लाड़ किया था और पूछा भी था कि—'क्यों रे, तुम लोग अपनी महतारी को भूल तो नहीं

गए थे ?'

बच्चों ने शब्दों में कुछ नहीं कहा था, लेकिन उनकी आंखों और चेहरे से इतना एहसास जरूर होता था कि बसंतलाल बच्चों में अकसर उसका ज़िक्र करता रहा होगा।

श्यामकली को यह चौथा वर्ष लगा है। रामकली ने निश्चय किया कि शाम को बसंतलाल से कहेगी कि अभी इस छोरी को स्कूल दौड़ाने की कोई जरूरत नहीं। जूं देखने के बहाने, श्यामकली के माथे को उसने अपने स्तनों के बीच टिका लिया, तो एकाएक ही उसे फूलो ताई की वही बात भी याद आ गई और यह भी कि दूसरा महीना लग चुका है।

बस, निबटाने को अब यही एक समस्या रह गई है। आज सुबह बच्चों के स्कूल चले जाने के बाद जब वह बसते के साथ बातें कर रही थी तब भी यह चिंता उसके भीतर मंडरा रही थी।

रामकली को बहुत बाद तक इस बात को सोच-सोचकर हंसी आती रही थी, कि अपने एकांत में भी, बसंतलाल उससे बच्चों की कसम खाने को कहने लगा था कि अब वह दोबारा छोड़कर नहीं जाएगी। उम्र में बीस साल बड़े बसंतलाल का बच्चों की सी दीनता के साथ वैसा आग्रह करना—और वह भी उस वक्त—सचमुच कितना रोमांचक लगा था उसे !

न श्यामो और न रतना—दसवें से पहले तो कोई हुआ नहीं। आज सुबह के बाद के आठ महीने भी गुजर जाए तो नवें में हो जाने का बहाना बन जाएगा।

अपने फालतू वक्त में रामकली को भूरे की भाभी का प्रसंग भी याद आता रहा, हालांकि अंदाज़ा तो उसने तभी लगा लिया था जब अमोलकचंद के साथ जाने से पहले एक बार यहां से आया था बसता। उसने तय किया कि इस प्रसंग को लेकर, वह किसी भी तरह की चिढ़ नहीं दिखाएगी—सिर्फ ठट्ठा करेगी। पिछले दो वर्षों की उसकी अनुपस्थिति में हरप्यारी से बसंतलाल का संबंध रहा है, इस बात से वह खुद अपने लिए एक नैतिक सहारा भी अनुभव कर रही थी। इस वापसी से पहले के दिनों में अमोलकचंद के साथ रहने का औरतपन संग-संग चला आया है। अपने पहले पति के घर लौटने पर वह सब कितना असुविधाजनक हो गया है !

बाहर से किसी ने पुकारा तो वह बाहर निकल आई। देखा—भूरे है।

भूरे रिक्शा के लिए खड़ा था। रामकली समझ गई कि एक वक्त की पारी करके लौटा होगा।

भूरे कुछ क्षण तो असमंजस में खड़ा रहा। फिर पूछा, "वसंता भैया घर में नहीं, भाभी ?"

"नहीं न।"—उसने धीमे से कहा और रिक्शे को ठीक से एक किनारे लगाने लगी। वह समझ रही थी कि भूरे अंदाज़ा लगाने की कोशिश कर रहा है। उसने अपनी धोती के छोर से ही रिक्शे की गद्दी को साफ करना शुरू कर दिया। वह चाहती थी कि उसके यहां उपस्थित होने के ढंग से ही भूरे यह समझ ले कि रामकली हमेशा के लिए यहां लौट आई है।

भूरे कुछ देर यों ही खड़ा माथे तथा गले पर का पसीना पोंछता रहा और फिर हाथ आगे बढ़ाता हुआ बोला, "ये पैसे ले लो, भाभी! आज ज़्यादा मजूरी नहीं हुई है। घर में गुड़ पड़ा हो तो तनिक एक लोटा पानी पिला दो।"

रामकली ने एक कागज़ के टुकड़े में लपेटकर, दो जलेबियों के साथ लोटे में पानी दिया और पूछा, "आजकल रिक्शा तुम्हीं चलाते हो क्या, भूरे ? वसंता ने तो छोड़ दिया लगता है!"

भूरे ने पानी पीते हुए ही 'हां' की मुद्रा में सिर हिलाया। कल दोनों पारी भूरे ही रिक्शा चलाता रहा था—पहले रूपबानी से यहां और फिर यहां से कल्याणी तक, लेकिन कल तो वह कुछ ऐसी रौ में थी कि ध्यान ही नहीं दिया।

भूरे पानी पीकर चला गया तो रामो ने पैसों को ठीक से गिना। कुल पांच रुपये आठ पैसे, लगभग दो वर्षों के अंतराल के बाद! वसंतलाल की कमाई के इन थोड़े-से पैसों को अपने हाथों में लेते हुए एक क्षण को उसे ठीक वैसा ही रोमांच हुआ था जैसा अंधेरे में दो-तीन सीढ़ियां एक साथ फलांग जाने पर भी पांव सही-सही टिक जाने पर होता है।

कल रात कुछ तो वह खुद ही अधर में थी, कुछ वसंतलाल ने नशे में और आसमान में कर दिया था। घर छोड़कर जा चुकी औरत की बातों को वह जैसे हथेली लगाकर थाम लेता रहा है और रामकली का दर्प फर्श पर गिरे कांच के बरतन की तरह और कहीं भले ही बिखरता हो, वसंतलाल यह नौबत आने नहीं देता। कल भी यही हुआ था। अपने पतित हो चुकने के अवसाद में होने की जगह, वह सुंदर, तारुण्य से लैस और दर्पिणी औरत के से तेवर में आती

चली गई थी। कदाचित् वसंतलाल के पास बड़े घर की बहुओं जैसी वापसी लेकर डेरे पर न लौटी होती तो शायद अमोलकचंद ठेकेदार के साथ बिताए समय को लेकर रामकली के भीतर उतना बड़ा हाहाकार उत्पन्न न हुआ होता। हो सकता है, थोड़ी देर विफरने के बाद, अंततः वह घुटने तक टेक देती।

अचानक ही, इस वक्त, रामकली को कमला पहलवान के यहां आनेवाली औरत की स्मृति हो आई। कमला पहलवान को त्याग देने का दो टूक निर्णय उसने तभी तो लिया था जब कहीं भीतर से यह आवाज आने लगी थी कि 'रामो, इस आदमी के लिए तुम दोनों में कोई फर्क नहीं।'

अब कहीं रामकली की समझ में आ रहा है कि अपने औरत होने के दर्प को जिस तरह वह बचाना चाहती थी, उसके लिए जरा दूसरी तरह की पारखी आंख चाहिए थी और धैर्य से कमला पहलवान और अमोलकचंद ठेकेदार को जरा दूर-दूर तक देख लेना था। अपनी उतावली में औरत का किसी आदमी को बाढ़ में बहते हुए की तरह का सिर्फ संयोग को पकड़ लेना ही तो हो सकता है। अपने अपवाद रूप से सुंदर तथा जवान होने और बसंते को अपात्रता का दर्प बचा में रह गया होता, तो अपने लिए दूसरा संसार चुन लेने की उतावली इतनी गले-गले न आ जाती कि बच्चों का मोह भी जाता रहता। बच्चों का ध्यान आते ही, वह अपने-आपमें चौंक-सी उठी, जैसे तैश में दो साल पहले बसंता का घर छोड़कर जाती रामकली को अब इस वक्त वह खुद अपनी आंखों में देख रही हो।

कल रात को बच्चे कहां सो गए या कि उन्होंने खाना खाया या नहीं— इस तरह की बातें स्मृति में पानी के बुलबुलों की तरह बुदबुदाकर बैठ गई हैं। बच्चे कहां हैं, उन्हें बुलाकर अपने हाथों से खिला दे—यह बात सिर्फ मन में ही घुमड़कर रह गई। होंठों तक सिर्फ उतनी ही बातें आईं जिनसे वह बसंता को दिखा देना चाहती थी कि अकरणीय जैसा उसने कुछ नहीं किया था, इसलिए कोई बहुत बड़े पछतावे का भी सवाल नहीं। जैसी जिंदगी रामकली चाहती थी, उसकी कीमत तो चुकानी ही थी।

वह बच्चों तथा बसंता के लौट आने की प्रतीक्षा ऐसे करने लगी जैसे अपने चारों तरफ चहलकदमी करती जा रही हो।

गोश्त को एक बार ठीक से चलाने के बाद, रामकली ने पानी डाल दिया और चावल बीनने बैठ गई।

"रामो"कहां हो"भीतर बैठी हो क्या, बहू ?"

वह जब तक अनुमान लगाती, फूलो ताई खुले किवाड़ के साथ आ लगी। कल जिस तरह की झड़प हो चुकी थी और जिस दर्प के साथ उसने ज़िक्र किया था अपनी वापसी का, एकाएक याद आ गया। लगा कि जितने नामालूम ढंग से बुढ़िया किवाड़ से आ लगी है, उतने ही आकस्मिक ढंग से कहीं यों न पूछने लगे कि अमोलकचंद ठेकेदार के वापस जाएगी या अब यहीं रहने का इरादा है ?

एक क्षण को लगा कि अपने छोटेपन के एहसास में वह सूप में के चावलों में जा गिरी है, लेकिन उतनी ही तेज़ी से उसने यह भी तय कर लिया कि दबना नहीं है। छोड़ के गई थी रामकली तो अपना घर—और लौट आई है वापस तो अपने घर में।

"बालक तेरे अभी वहीं खेलते हैं, बहू ! भतेरा मैंने कहा कि चलो रे हरामज़ादो, बरसों के बाद अम्मा का साया नसीब हुआ है, संतोपी मैया की किरपा से—अब काहे दिन-भर आवारागर्दी करते हो ?"मगर बच्चों की दुनिया ही दूसरी होती है। उनका मन तो अपने जैसों में ही रमता है। हमारी रज्जो के पिल्लों के संग खेल रहे हैं।"

रामकली ने यों ही आंखें उठाकर देखा, फूलो ताई का चेहरा खिड़की से झांकती पालतू बिल्ली का सा लग रहा था। तमाशबीनों की सी चमक उसके चेहरे पर नहीं थी। थोड़ी देर यों ही देखते रहने के बाद रामकली ने अपने-आपको समेटा और बोली, "आओ ताई, भीतर बैठो।"

बुढ़िया ने भीतर पहुंचकर बैठने तक सारे कमरे को जैसे एक ही नज़र में टोह लिया। रामकली के माथे पर हाथ फिराकर बोली, "रामो, तू वापस आ गई है, तो ससुर बसंता के कुएं में पानी लौट आया है।"

इस बुढ़िया से क्या बच्चों ने कहा होगा कि हमारी मां अब हमेशा के लिए घर आ गई है ?

"बसंता कहता हुआ निकल गया था कि ताई, हमारी रामो अब हमेशा को लौट आई है। कल की तेरी बातों से तो लगता नहीं था, मगर जो तूने अब किया है, समझ कि तेरा भी दूसरा जनम हो गया और बच्चों का भी। सब मिल जाता है इस दुनिया में भाई, माई की छांह कहां मिलती है ! वो तो बहू, धनभाग हैं, जो बसंतवा बाप का बाप, माई का माई है। तेल-मालिश भी ऐसी करता है, जनानियां क्या खाक करेंगी। नहीं तो भैया, इस उमिर के

बिना महतारी के बच्चे ! तेरे बच्चे तो स्कूल से आवें, तो 'बाबू, कहां है ?' और सोते से जागें तो 'बाबू, कहा हो ?' कहते हैं। हम तो खैर, दूर के हैं—ये तो तू ज्यादा जानेगी कि बसंता खरा सोना है।"

रामकली को कुछ नहीं सूझा कि वह इन सब बातों के जवाब आखिर में कहे क्या ! चुपके से उठकर, सुबह की बची जलेबियों में से एक पत्ते में ले आई, "चा पीती जाना, अभी बनाती हूं।"

"सिगड़ी में तो कुछ और चढ़ा दीखता है बहू ! मसालों की गंध आ रही है। मीट-बीट बना रही हो क्या ? कोई कलेजी-गुर्दे का मुलायम टुकड़ा पक गया हो तो ज़रा चखा दे। मौत जब नज़दीक का डेरा कर लेती है, तो जीभ से 'ला-ला' कहती है। जलेबी देखते ही लार छूट गई।"

फूलो ताई हंसी, तो रामकली को भी हंसी आ गई। बोली, 'कलेजी-गुर्दा तो नहीं ना, ताई ! सीना-चाप लाए हैं, मगर जहां तक हम सोचते हैं, खाने लायक हो गया होगा।"

बुढ़िया को थोड़ा-सा गोश्त तथा पीने को पानी देने के बाद, जैसे ही वह एक तरह की मानसिक निश्चितता में हुई थी कि बुढ़िया गोश्त खाते-खाते ही बोली, "गनीमत हुई कि कमला पहलवान या ठेकेदार से तेरे कोई बच्चा ना हुआ। उन हरामियों को तो भतेरी लुगाइयां मिल जाएंगी, बसंतवा की गिरस्थी चौपट की चौपट रह जाती। बच्चों को भी सभालना, मेहनत-मजूरी भी करना—बहुत तेज़ी से बुढ़ाने लगा था तेरा बसंता ! मैं तो अक्सर यों सोच-सोच के कांप उठती थी, बहू, कि कहीं इस ससुरे को कुछ गलत-सलत हो गया, तो इन अभागों का क्या होगा ? भीख मांगते सड़कों पर, तो आखिर बदी तेरे ही मत्थे आती। पुन्न किए होंगे तेरे बाप किसना ने, जो बसंता जैसा धीरजवाला मिल गया !"

रामकली हमेशा ही यह अनुभव करती है कि उमरदार औरतें हर चीज़ को ऐसे देखती हैं जैसे चारों तरफ से उलट-पुलटकर टोह रही हों। उसने धोती का पल्लू काफी ढीला कर लिया और निश्चय किया कि जान-पहचान-वालियों के बीच लंबी अरज की कुरती पहनकर बैठना चाहिए उसे। हालांकि फूलो ताई और भी बहुत-सी बातें कह गई थी, लेकिन रामकली के कानों में सिर्फ यही बात मच्छर की तरह भिनभिना रही थी कि कदाचित्, वक्त ज्यादा बीत चुका होता तो ?

"कल जाने किसने बनाया था—जहां तक है भूरे ने बनाया होगा !

गोश्त तो तूने बनाया है। अभी बूढ़ों के लायक गला नहीं, दांतों में फंसा जा रहा है, मगर मसाला बढ़िया पिसा है। तू तो कल कुछ नाराज़ हो गई-सी लगती थी, बहू !···लेकिन हमारी नन्हे की माई है ना, खिलंडरी किस्म की ज़रूर है, उलटा-सीधा बोल जाती है, मगर कहती यही है कि 'रामो दीदी तो मांगुर मछरी है। कांटेदार—मगर मक्खन की लोई।' खैर, ये तो हकीकत है कि इतनी उमिर हमारी भी हुई इस बस्ती में—आंखों के सामने के निकले, बाल-बच्चों वाले होते देख लिए। तेरे जोड़े की किस्मवाली बहू हम लोगों में से किसीके घर देखी ना गई। कल रात ही तो नन्हे की महतारी मज़ाक कर रही थी—'रामो दीदी कहीं मुरगी होती तो रोज सवेरा दर्जन-भर अडे देती।' ये तो तू विश्वास रखे रहना, बहू, तेरी बदी सोचेवाला कोई नहीं ना। भली-बुरी बात कभी ज़बान से निकल जाया करे, बुरा ले बैठने की नहीं ना। खुद बसंता एक दिन कहता था—यों तो हम यहां तक सोचती हूं, साल-भर बीतने को आया होगा—खुद तेरा खसम कहता था—'फूलो ताई, वह मेरे हक की थी ही नहीं। ना वो किसना जैसे गरीब लावारिस बाप की बेटी होती और ना मेरे हत्थे लगती। दुख हमें बहुत है और खास तौर पर तो इस बात से कि नादान बच्चों को संभालना खेल नहीं—गुस्सा कोई नहीं ना। भगवान उसे सुखी रखें।'··· शक्ल से तो उठाईगीरों-सा लगता है, मगर दिल का हीरा-मोती है तेरा मालिक।"

रामकली सिर्फ सुनती और प्रतीक्षा करती रही कि या तो बसंतलाल आ जाए और या गोश्त खाना निबटाकर, बुढ़िया चली जाए। वह डर रही थी कि कहीं बुढ़िया की खोज में रज्जो भी इधर ही न चली आए। इस इतमीनान के बावजूद कि उसकी वापसी को लेकर चिढ़ाने का इरादा लोग नहीं ही दिखाएंगे, कम से कम मुंह सामने—वह लगातार यह महसूस कर रही थी कि लोगों के देखने का बोझ उसे निरंतर असुविधा में डाले रहेगा। हालांकि भीतर से तो वह भी यही मानती है कि बसंतलाल की सहिष्णुता और सदाशयता में कोई खोट नहीं, लेकिन कुल मिलाकर इस तरह की सारी चर्चाओं का बोझ उस पर यही पड़ता है कि बुरी तो रामकली तू थी !

पहले का वक्त होता, तो वह आहत सर्पिणी का सा रुख अख्तियार करती, पर इस तरह की वापसी में आक्रामकता का रुख बनाए रखना लगातार एक तनाव की स्थिति में डाले रहेगा।

किंचित् विषाद और निरुपायता की सी मुद्रा में, वह अपने-आपको चावल

बीनने में केन्द्रित किए रही। फूलो ताई की बातों के जवाब में चुप रह जाते हुए ऐसा लगा जैसे कोई बिल्ली अपने नाखूनों को समेटे बैठी हो। उसने अपने समूचे अस्तित्व को एक तरह के चौकन्नेपन की स्थिति में घिरा पाया और यह वास्तविकता उसके सामने साफ-साफ उभर आई कि ज़िंदगी-भर इस तरह के झूठ को संभाले रखना भी कितना बोझ-सा होगा कि होनेवाले बच्चे का पिता कोई और नहीं!

रामकली ने चोर आंखों से फूलो ताई को देखा। वह, गोश्त की बोटियां निपटाकर, अंगुली से कटोरे में लगी तरी चाट रही थी। रामकली को एक हलकी-सी कपकपी छूट गई। वक्त पूरा होने पर, एहतियात के तौर पर चाहे वह कमला नेहरू अस्पताल में ही भर्ती क्यों न हो जाए, इन्हीं लोगों का सामना करना होगा। नई-नई आनेवाली बहू की मुंह दिखाई हो या नये-नये आनेवाले बच्चों की—औरतों का देखना भीतर तक भेदता है।

फूलो ताई ने कटोरा धोने को उठाया, तो रामकली ने रोक दिया।

थोड़ी देर मधुमक्खी की तरह मंडराकर, फूलो ताई आखिर वापस चली गई तो वह दूर तक उसे जाते देखती रही।

दोपहर बाद का समय भी अब बीतता महसूस होने लगा था। सामने के नाले के आस-पास चरते सुअरों के झुंडों में, इस वक्त, एक खास तरह की निश्चितता दिखाई दे रही थी। उनके इधर-उधर चलने-फिरने में मंथरता आ चुकी थी, सुबह के वक्त का सा आवेग नहीं था। कौवे कतार बांधकर निकलते थे तो अपनी ही जगह पर खड़े होकर देख लेते थे।

रामकली को अचानक ही इस बात का ध्यान आया कि हो सकता है, बसंतलाल शाम होने के बाद ही लौटे। उसने तय किया, जैसे भी हो जान-पहचान के लोगों में अपने उठने-बैठने की स्थिति को जल्दी ही सहज बना लेना है। लोगों से कटे रहने पर वक्त सिर पर सवार हो जाता है।

उसने एक बार फिर दूर तक, फूलो ताई के घर की तरफ देखा—बाहर बच्चे खेलते-कूदते दिखाई दे रहे थे, लेकिन उनके चेहरों को बच्चों की भीड़ में अलग से पहचान पाना संभव नहीं था।

93

बसंतलाल जब वापस लौटा, चारपाई के साथ चिमनी वाला लैंप लेता

आया था। छोटी बत्ती की तुलना में, लैंप की रोशनी को सिर्फ अपेक्षाकृत अधिक ही कहा जा सकता था, लेकिन एक तरह की ताजगी का सा अहसास काफी देर तक कमरे में भरा रहा।

भूरे रिक्शा ले जाने आया, तब तक बसंतलाल भी आ चुका था। रामकली ने जानना चाहा था कि रात की वापसी में भूरे खाना यहीं खाएगा। बसंतलाल ने भूरे को एक गिलास में गोश्त और कागज की पुड़िया में सलाद देते हुए कह दिया था कि 'रोटियां अपनी भाभी से सिकवा लेना। सब्जी बनाने के बबाल से बच जाएगी। रात को लौटे, तो सीधे अपने घर चले जाना, हमको जगाने की जरूरत नहीं। रिक्शा अपने ही डेरे में खड़ा कर लेना। ताला देना न भूलना।'

बसंतलाल के इस वक्त के व्यवहार में उतावली कहीं नहीं दिखती थी और न किसी तरह की वाचालता या उत्साह की अति। सुबह ऐसा लगता था, जैसे रामकली की वापसी को संभाल न पा रहा हो। भूरे को विदा कर देने के बाद, वह बच्चों को खिलाने में जुट गया था और फिर सुलाने में। हालांकि यह कोई अलग से ध्यान देने की बात नहीं कि बसंतलाल सोने की व्यवस्था क्या करता है, लेकिन रामकली जैसे अपने शरीर पर की त्वचा से यह देखती रही कि बच्चों को बसंतलाल ने पुरानी वाली चारपाई पर सुला दिया। जिस तरह से उन दोनों को अलग-अलग करवट बसंतलाल ने सुलाया और चादर ओढ़ाने के बाद काफी देर तक थपथपाता रहा...रामकली ने अनुभव किया, आज वह अपने लिए संपूर्ण एकांत जुटाना चाहता है। पहले की गृहस्थी में बसंतलाल में कभी-कभी हविश चाहे जितनी दिख जाती रही हो, इस तरह सन्नद्धता नहीं दिखती थी।

बसंतलाल ने बच्चों के पास से हटकर अपनी चारपाई पर भी दरी-चादर डालना शुरू कर दिया, तो रामकली उठ खड़ी हुई और खुद बिछाने लगी। धीमे से बोली, "अब बहुत सुहागरात का सा बिछौना फैलाने में क्या लगे हो! लाओ, मैं बिछा लूंगी। तुम खाना खा लो अब। बच्चों को तो तुम बिलकुल जनानियों की तरह सुलाते हो।"

चाहे धीमे हो या खिलखिलाकर, रामकली का हंसना सचमुच अद्भुत लगता है बसंतलाल को—खास तौर पर जब वह अपनी निर्बाध प्राकृतिकता में से हंसती है। खाने को तो वह पहले भी कह चुकी थी कि बच्चों को मैं खिला लूंगी, तुम भी खा लो। बसंतलाल ने सिर्फ आंखें उठाकर देख लिया और

छुटकी को गोश्त खिलाने में व्यस्त हो गया था।

"इंसान जब हमारी पहुंच से दूर चला जाता है, रामकली, उसके सारे गुन-अवगुन तभी सामने आते हैं। अपने भी। जब तुम यह घर छोड़कर जा चुकी ना, बाद में अरसा गुजरा होगा—रात को अचानक नींद टूट जावे, तो ससुरी बड़ी देर-देर तक आवे ना। तुम्हारी याद आवे तो हमको पहली बात यही लगे कि—नहीं ना, जितना हम चाहते थे, वैसा ब्यौहार बन नहीं पाया। आदमी के जी में जितना रहता है, रामकली -"

रामकली बीच में बात काटकर बोल गई कि 'अरे, नहीं, तुम्हारे ब्यौहार में कभी कोई खोट नहीं रहा, बसंता!' लेकिन इस बीच जब बसंतलाल ने आकाश को सुनाने की सी मुद्रा में कह डाला कि 'जितना हमारे भीतर रहा, वो सब तुम्हारे सामने आ लिया रहता, तो तुम जाती नहीं। फूलों पर पांव रखके चलना पत्थरों पर पांव रखके चलने से ज्यादा मुश्किल होता है, ये सबक हमें पूरा अब तक आया नहीं था।' तो रामकली समझ गई कि बात के पूरे प्रसंग को वह पहले समझ नहीं पाई थी।

कहने को हुई कि 'बसंता, तुम्हारे चेहरे और बानी में बहुत अंतर है।' लेकिन असमंजस में इतना ही कह पाई, "अब तो खाना खा लो। रोटी सूखी पड़ जावेगी।"

बसंतलाल उठा और छोटी वाली कोठरी में रखी पुरानी साइकिल की कोठरी में से देसी शराब का अद्धा निकाल लाया। रामकली ने घूरकर देखा, तो बोला, "हम लती नहीं हुए हैं, भैया, कहो कि करीब-करीब छूट गई।... मगर आज तुम टोकना नहीं।"

रामकली चुप लगा गई। पीछे घूमकर, जस्ते के छोटे देग में से प्याज, मूली, टमाटर, और धनिया, हरी मिर्च मिलाकर बनाया हुआ सलाद एक प्लेट में निकाला। बोली, "थोड़ी बोटियां भी कर दूं .....बहुत हैं अभी। एक किलो से कम तो तुम लाए नहीं दिखते ?"

"कमखर्ची और तंगदस्ती का तो जिंदगी-भर का साथ है, रामकली! हम गरीबों के घर में ढंग का खाना बन जावे, इसी पर हैरत है। ऐसा कर, गोश्त की सिर्फ बोटियां एक बड़े कटोरे में कर ले।"

रामकली ने जब तक गोश्त कटोरे में डाला, बसंतलाल दो गिलासों में डाल चुका था। दो चारपाइयां पड़ जाने के बाद, कमरे में बहुत थोड़ी जगह

व गई थी। दोनों को चारपाइयों से लगकर बैठना पड़ रहा था।

"हम नहीं लेंगे, औरतों के लिए ये अच्छी चीज़ नहीं। तुम जल्दी-जल्दी ले लो तो साथ-साथ खा लें।" कहते हुए, रामकली बसंतलाल की ओर मुंह करके बैठी ही थी कि बसंतलाल ने गिलास उसकी ओर बढ़ा दिया, "आगे जिद नहीं करूंगा, रामकली, मगर आज की रात खराब मत कर। देखने को तू हमें बहुत खुश देख रही होगी—हैं भी—मगर तेरे लौट आने की बहुत बड़ी उदासी भी है। एक खयाल जाता है, हजार आते हैं। हमें अपने बचपने का एक वाकया याद आ रहा है। मैनपुरी वाया इटावा होके यहां प्रियाग पहुंचना था। कोई तीस-बत्तीस साल बीते होंगे। गांव से कोई आसरा नहीं, यहां सुलेमसराय में कोई रिश्ते के मामा रहते थे। जिस साल तुम्हारा बाबू किसना मरे हैं, वो भी फौत हुए। दमे के मरीज़ थे। उनके साथ साल-डेढ़ साल रहे हैं। गुस्साते थे, तो लात मारते थे। खैर, हम तो कुछ दूसरी चीज़ कहने जा रहे थे ना? हां तो, हुआ क्या, कि गांव से पांवों-पावों पहुंचे मैनपुरी और वहां से एक ट्रिक में बैठके इटावा और इटावे से प्रियाग का टिकट खरीद के—समझो कि टिकट भी और बाकी बचे आठ-दस आने भी, एक पुराना-सा रूमाल रहा, उसीमें बांधे और जब भीतर जाने लगे टेशन, का तो पता चलता है कि रूमाल या तो किसीने मार लिया, या गिर गया कहीं। बड़ी देर तक टिकट घर के फाटक के बीच चक्कर काटते रहे। बदहवासी हो गई। रोवें और जो ऐसा हो गया कि लगे पाजामे में ही पेशाब छूट जावेगी। उम्र तब क्या रही होगी, यही चौदह-पंद्रह की। हमारी समझ में न आवे कि अब हम चैला को लौटें तो कैसे—प्रियाग को जावें तो कैसे! तू समझ रही होगी, हम क्या उल्ल के पट्ठों की तरह बेमतलब बोले ही चले जा रहे हैं।"

देर तक बोलते रहने के बाद भी अपनी अनुभूति को ठीक से व्यक्त न क पाने की खिसियाहट, उसके चेहरे पर साफ झलक आई थी। एक ही सांस वह लगभग आधा गिलास पी गया। गिलास ज़मीन पर रखते हुए, उसने गो का एक बड़ा-सा टुकड़ा मुंह में भरा। थोड़ा-सा चबाने के बाद ही, सलाद मुंह में भर लिया, जैसे डर रहा हो कि भीतर की दारू बाहर न निकल आ इस सब के बीच उसकी नज़र एकटक रामकली पर लगी रही।

प्रतिवाद की कोई गुंजाइश न देखकर रामकली ने धीरे से गिलास उ और एक छोटी-सी घूंट भरके, नीचे रख दिया। तब तक कटोरे में से की बोटी बसंतलाल ने टोह-टोह के ढूंढ निकाली, "ले, ये सीने का टुकड़

संजोग से आज अच्छा गोश्त मिल गया, ज्यादातर तो हवीवा ससुर छांट-छांट के बूढ़े बकरे कहां से लाता है जाने··· ··"

"खुद तुम्हीं अब कौन से जवान बकरे रह गए हो ?"—जब तक रामकली बात के अप्रासंगिक या कि कटु हो जाने के बारे में सोच पाती, मज़ाक बसंतलाल के चेहरे पर मच्छर की तरह भिनभिनाता बैठ चुका था। रामकली के मन में कहीं भी नहीं था कि बसंतलाल से इस तरह की कोई बात कहनी है, इसलिए और ज्यादा हतप्रभ हो गई। यह भी अहसास हो गया कि अपनी खिसियाहट में जितनी देर वह चुप रह जाएगी, बसंतलाल की खिन्नता ज्यादा गहरी होगी। गोश्त का टुकड़ा उसके हाथ से लेते हुए, रामकली ने अपनी आंखों को गहरी आत्मीयता में कर लिया और भरपूर शरारत की मुद्रा में बोली, "मेरी गैरहाज़िरी में, शायद है, तुम भूरे की भौजाई को भी इसी तरह सामने बिठा लेते होगे और यों ही गोश्त के टुकड़े बीन-बीन के देते होगे, जैसे बच्चों को टोह-टोह के दी जाती है ? कितना पीती थी· ··?"

रामकली का पूछना जितना आकस्मिक था, उतना ही उसके स्त्रीत्व की कौंध से भरा हुआ—अन्यथा, शायद, बसंतलाल कुछ हड़बड़ा जाता और ठीक से उत्तर न दे पाता। हालांकि रामकली ने अपना पूछना समाप्त करते ही, उस तरह से ठहाका नहीं लगाया था, जैसा वह इस तरह की शरारत में होने पर आदतन करती है, लेकिन फिर भी बसंतलाल को सारे कमरे में रामकली के हंसने की गंध अनुभव हुई और कुछ क्षणों तक वह मुग्धभाव से रामकली को देखता रहा।

बसंतलाल के एकटक घूरने से बचने की कोशिश में दिखने के लिए अपना सिर थोड़ा-सा झुका लिया और गिलास को अपनी अंगुलियों में घुमाने लगी, तो उसके शीशे में बसंतलाल के साथ इसी कमरे में बिताया हुआ सारा समय स्मृति में उभरता चला गया।

रामकली कुछ क्षणों को अपने-आपको एकांत में आईने पर प्रतिबिंबित देखने की सी तन्मयता में डूबी ही रह गई। इसी आत्मविस्मृति में उसने गिलास घुमाते में बाहर हाथों पर छलक आई शराब की गंध को अनुभव किया और अपनी आवाज़ को गंभीर तथा विश्वसनीय बनाती हुई बोली, "सुनो, कभी हम मज़ाक में गलत-सलत बात कह भी जावें, तो बुरा न मानना। औरत का पूछना तो गिरस्थी में रहती हुई का भी किसी मतलब का होता नहीं, हम तो खुद अपने हाथों का हक हथेली पर के आटे की तरह झाड़ गई थीं। यों ही

मजाक में पूछ लिया था। आती-जाती रहती थी, भूरे की भौजाई, तो बच्चों की देखभाल भी कुछ करती थी—या, बस अकेले तुमको ही बनाने के काम पर बस थी ?"

इस बार रामकली ने खुलकर ठहाका लगाया और जब तक मैं बसंतलाल अपनी खिसियाहट में ही डूबता-उतराता रहा, रामकली इतमीनान से गोश्त खाती रही और फिर धीमे से एक घूंट भरकर, बोली, "तुम अपना गिलास खाली क्यों रखे हो, बसंता ? हम और नहीं लेंगे।"

थोड़ी देर चुपचाप पीते और गोश्त तथा सलाद के टुकड़े टूंगते हुए, बसंतलाल सोचता ही रहा। अंत में सफाई देता हुआ-सा बोला, "सच बात तो यह है, रामकली—कोढ़ी ही कोढ़ी के नजदीक आता है। भूरे के भैया को मरे भी तो कितने बरस हो गए ? तुझे भी कुछ याददाश्त तो होगी, क्योंकि शायद है, इसी साल हमारा रतना हुआ था ?"

"यानी बरसों की एक रांड वह और दूसरे रहती जोरू के रंडुवे तुम ?"

"अब जो तुम कहो......"

"मुझे कुछ कहना-सुनना नहीं। गिरस्थी करनी हो, तो बीते में से इंसान को उतना ही उठाना चाहिए, जितने से बू न आती हो।"

रामकली कह चुकी, तो इस बात का ध्यान आया कि ऐसा कहकर तो वह अपने ही पक्ष में बचत निकाल रही है।

धीमे से बोली, "हमें तो दूर से ही दिखी थी कल भी, मगर मरगिल्ली लगने लगी अब तो। बदनसीबी औरत को ज्यादा खाती है।"

रामकली के स्वर में जो संवेदना थी, वह दिखावटी कतई नहीं लगती थी। बसंतलाल ने आंखें उठाकर, रामकली की ओर देखा। उसके चेहरे पर एक तरह का आलोक दिख रहा था। रामकली अपने जिस तरह के लावण्य में अब हो आई है, बसंतलाल के लिए अप्रत्याशित ही घटित हुआ है। जिस साल उसने रामकली को अपनी घरवाली करके जाना था—उस दुबली-पतली, सपाट-सी लगती लड़की में यह आज वाली रामकली कहां थी।

"एकाध दिन तो बैठी ही होगी यहां, लेकिन अक्सर ना तो उसने मांगी और ना ही मैंने उसे खुद पिलाई। पीने पर वह तुम्हारी तरह खिलती नहीं, रामकली—और ज्यादा मरी-सी हो जाती है। उसके भीतर की नाउम्मीदी बाहर आती है और सूरत डरावनी-सी। कभी-कभी तो हमें अपने पर सल्ल

उठती थी कि यार, इस बदनसीब में रामकली को कहां ढूंढता है तू। हकीकत तो, खैर, ना तुमसे छिपी है और ना आखिर-आखिर मैं खुद तुमसे छिपाता मगर, कसम जो तुम कहो, सो है—याद हमें औरत के नाम पर सिर्फ तेरा ही चेहरा रहा। अब तो नसीबों वालों के घरों की बहुओं-सी निकल आई है, रामकली— मगर तू यो जान कि मेरा देखना तो तब से आज तक का है, जब तेरे औरत होने की पहचान सिर्फ धोती-पेटीकोट और सिर के लम्बे बालों से ही ज्यादा की जा सकती थी। तू सोचती होगी, बसंता आज फिर कुछ तरंग में हो आया है, मगर कभी खुद पूछ देखना फूलो ताई से कि तेरे जाने के बाद भी तुझे तोहमत देने से अपने-आपको बचाता आया हूं और यही कहा कि, "ताई सच पूछो तो, रामो हमारे हक की नहीं। तू विश्वास जान · · "

"जानती हूं, बसंता! जताने की जरूरत नहीं ना। फूलो ताई आज दुपहर को आई थी। बातों में ऊंच-नीच का ध्यान इस तरह की बूढ़ी औरतों को कम ही रह जाता है—फिर भी, हमने तो जलेबी भी दी, गोश्त भी खिला दिया। चलो, कुछ भी हैं, सयानी है। कुछ ये भी मन में हुआ कि रामकली, दो साल बाद भी क्या यही लौटी है तू? क्या कहते हैं कि जिसे गारा ढोना हो, वो अपना चांदना सही रखे। बर्दाश्त करने से ही गिरस्थी चलती है, ये हकीकत अब आके खुली है, तो कानों का सुना, आखों का देखा पचाके ही चलना पड़ेगा। नहीं तो, कहने को तो हम भी कह ही सकते थे कि 'ताई, तुम कौन सती-सरोसती हो। जमना पंडित का नाम हम भी बहुत सुनते आए हैं। · ···
मगर फिर जी यही कर लिया कि रामकली, बच्चों के छूके, बड़ों के टोके को बचाकर निकल जाना ठीक। सच पूछो, बसंता, तो मन का खेल बड़ा बिचित्तर होता है। ज्यों-ज्यों हम सयानी होती गईं, मन में तुम्हारा उम्रदार होना कांटा लगे पांव का चलना होता गया। कुछ उलटी-सीधी तो कहा की जनानिया नहीं कहतीं, मगर खुद हमारे जी में भी ये गुरूर सस की तरह बैठना ही गया कि 'रामकली, गले पड़े रोजों की निबाहन हो गई है।'······यों ये भी हकीकत है, बसंता, कि जब तक मैं हमने अपने औरत होने का शऊर संभाला, तुम हमको एक बच्चे की महतारी बना चुके थे।"

अपना वाक्य समाप्त करके, रामकली ने आत्मीयतापूर्वक मुस्कराने की कोशिश की, तो लगा, जैसे काफी बड़ा अंतराल पार करके समीप आ पहुंची है। इतने सधे और अनवरत ढंग से बोल जाने की प्रतीति पहले से भीतर थी नहीं। अब कहीं जाकर, अपना गिलास खाली करके जमीन पर रखने लगी

रामकली, तो सिर्फ हाथ में ही नहीं, समूचे अस्तित्व में मद्धिम-सी कंपकंपी अनुभव हुई। बड़े जतन से रामकली ने अपने होठों को पोंछा। इस तरह के धीमे और ऊष्मा-भरे सुरूर का हो आना उसे सुखद लगा और वसंतलाल के उसके गिलास में थोड़ी-सी शराब ढाल देने के वक्त को रामकली ने चुपचाप बीत जाने दिया। जैसे हवा मौजूद रहती है, यह सतर्कता इस वक्त भी उसके भीतर अंधेरे में उड़ती चिड़िया की सी अदृश्यता में मौजूद थी कि बात वसंतलाल के दिमाग में आज ही डाल देनी है। पास-पड़ोस की औरतों से इस बारे में तभी बोलना ठीक रहेगा, जब वो खुद पूछने लगेंगी।

इस समस्या का ध्यान आते ही, रामकली का अपना चेहरा थोड़ा नीचे उतर आया-सा महसूस हुआ और उसने गिलास को किंचित त्वरा में ऊपर उठा लिया और एक अपेक्षाकृत लंबी घूंट भर गई।

१४

वसंतलाल, इस वक्त, तालाब में उतरी हुई भैंस की सी निर्द्वंद्वता और तृप्ति में दिख रहा था। रात के सन्नाटे के कुछ ज़्यादा गहरा हो जाने के साथ ही, छोटे से, कम ऊंचाई वाले उनके कमरे में लैंप की रोशनी अपेक्षाकृत ज़्यादा चटख हो आई लगती थी।

रामकली गौर से देखती रही। दाढ़ी दोपहर बाद ही बनाई होगी वसंतलाल ने और चेहरे पर की त्वचा ज़्यादा उजागर भी दिख रही थी, लेकिन कुछ इस तरह कि वसंतलाल की उम्र इस वक्त सारे कपड़े उतारकर नहाने बैठ गई औरत की तरह बेपर्दा हो आई लगती थी। इससे तो बढ़ी हुई दाढ़ी में कल रात कम उम्र लगता था वसंतलाल। नाक का किंचित् भोंथरा सिरा गौर से देखने पर अपेक्षाकृत ज़्यादा भद्दा महसूस होने लगता है। भूरे की भाभी में जिस तरह की नाउम्मीदी की बात अभी-अभी वह कह रहा था, वैसा कुछ कम से कम इस समय—वसंतलाल में तो नहीं, लेकिन एक बीत चुके होने का सा खालीपन अक्सर आंखों में ही नहीं, चेहरे पर की त्वचा पर उतर आता है। खास तौर पर तब, जब वसंतलाल चुप साधे रहता है। बोलते में तो—जब कभी भी वह अपने भीतर से बोलता है—निरंतर अपनी छाया में बिठाता हुआ-सा लगता है और सिर्फ उम्र में ही नहीं, सदाशयता में भी बड़ा अनुभव होने लगता है।…लेकिन जब चुप्प हो जाता है, तो उम्र

वसंतलाल के चेहरे पर दरवाजे के बाहर आकर बैठ गई बुढ़िया की तरह साफ-साफ झलकने लगती है।

"अपने ठीक से खाने-पीने की चिंता कभी तुमने की नहीं वसंता! अच्छा किया, रिक्शा खींचना छूट गया। ऐसी तो कोई ज्यादा तुम्हारी उम्र भी नहीं। आदमी खाता-पीता और बेफिक्र हो, तो साठ का भी पानीदार दिखता है। तुमको तो पचास भी ना हुए होंगे।"

"तुम्हारी मेरी उमिर में यही कोई उन्नीस-बीस सालों की घटी-बढ़ी होगी, रामकली! अमीरों में उम्र छिप जाती है, गरीब की तो जोरू उम्र में थोड़ा-सा ज्यादा हो, तो अपने खाविंदों की महतारी दिखाई देने लगती है—मर्द उम्र में बड़ा हो, तो चाचा-ताऊ का सा चेहरा निकल आता है। उम्र और हैसियत का देखना तो इसी हकीकत पर ले जाएगा, रामकली, हम तेरी औकात के नहीं। मगर उसूल और दयानतदारी को, अंदरूनी मुहब्बत को भी कोई दर्जा हासिल हो तो तेरा यह वसंता भी गुनेगार नहीं। यों समझ कि जिस्म का तेरे गुनेगार हो सकता हूं, मगर बात यो भी है कि जजबातों का हरामपना हमारी नीयत में नहीं। अब तू यों जान कि जान-पहचान वालों ने तो लाख उलटी-सीधी बातें भी जरूर कही होंगी, मगर हमने यों करके सुने का नामुना कर दिया कि जोरू ना हुई होती, बेटी के हक में आई होती, तो सारी दुनिया में जगह ना बचे ससुरी, बाप के दिल में की जगह कौन छीन सकता है। सुबह अचानक तू वापस आई है, तो यों यकीन कर रामकली कि दिल एक तरह से बाप का सा भी हो आया कि वसंता रे, तेरी दुआओं का सिला मिल गया। होने को तो जब तू छाती से आ लगी है, तो अपनी उम्र और बदसूरती का खयाल भी जाता रहा—और अगरचे तू इसे बेशरमी ना समझे, तो जैसे तू आज मेरी औरत हुई है, दो बच्चे पैदा करके ना हुई थी।"

वसंतलाल की आंखों में एक गहरी आर्द्रता छा गई थी और बुझते हुए-से चेहरे में जिजीविषा की अंतहीन लगती हुई-सी कौंध।

रामकली ने दिखाने-भर को, सिर का कपड़ा थोड़ा नीचे कर लिया। कहीं बिलकुल तल में से यह कल्पना उभरी कि काश, उसकी गृहस्थी में उम्र और स्वास्थ्य का इतना बड़ा फासला नहीं हुआ होता। अनुभवी और उदार होने की प्रतीति ने वसंतलाल की आत्मा के सौंदर्य को उजागर करना शुरू कर दिया है, लेकिन उम्र में सिर्फ छाया दे सकने वाले पेड़ की सी गरिमा बाकी रह गई है।

रानकली ने मूली का एक टुकड़ा मुंह में भर लिया और बोली, "कुदरत भी कुछ कम खेल नहीं खेलती, बसंता ! इंसानियत देखने को उसने हमें तुम्हारे जिम्मे किया, हविश दिखाने को ठोकरें दिखलाईं। दोष तो जरूर देते होंगे देने वाले—हम खुद भी देती ही हैं—मगर ये भी हकीकत है कि उम्र और अक्ल में भेंट होते बड़ा वक्त लगता है। जब तक में हम अपने जोश में रही है, यही फितूर सिर पर सवार रहा कि रामकली, तू ब्याही नहीं गई, कब्जे में की गई है। तेरी लावारिसी का फायदा उठाया गया है। बेवक्त की मौत तेरे बाप को ना आई होती, तो तेरे जज्बातों की सुनवाई भी जरूर होती। जानने-सुननेवालियां और आग को आंचरा दें, तो यही मलाल सिरहाने रखके सोया करें कि अब तो जब सोना है, अपनी यतीमी की कीमत चुका के सोना है।...ये होश बहुत बाद में आना शुरू हुआ कि रामकली, बच्चों वाली औरत को सिर्फ जोरू ही नहीं होना होता, महतारी भी होना होता है।...तुम क्या ये सोचते थे कि रामकली, जो जानवरों से भी बदतर जी बनाने के लिए निकल गई, तो बच्चों का खयाल कभी आया ही नहीं ? दो बरस लगातार किसी चीज को गुनाह की तरह ठेलती रही हूं, अपने भीतर से बाहर, तो बस, इन्हीं नामुरादों का खयाल है, बसंता ! वो तो जिद और हविश की मार, ऊपर से तुम्हारा पिंजरे का दरवाजा खोलके बैठ जाना कि, 'रामकली, तुझे जाना ही है, तो मैं रोकने वाला कौन ?'...भले आदमी, तब तुम कौन थे, जब तुमने ठीक से सोलवां भी पूरा न होने दिया ? कौन जानता है कि तुम सख्त पड़ गए होते तो शायद है, हम दब गए होते। हां, लड़ती-झगड़ती जरूर—कचहरी-मुकद्दमा करने जाने की ताब तो थी नहीं।"

बसंतलाल ने अपनी किंचित् नुर्ख हो आई आंखों को कोशिश करके सामने सीध में किया और हाथ बढ़ाकर, रामकली के घुटने पर रखता हुआ बोला, "सुन, रामकली। कुछ दिनों हम कारपेंट्री के काम में भी रहे। दारागंज के मौलाना कादिर हुसैन का कहा हुआ इतना हमें आज भी याद है कि 'आदमी खुदा से झूठ बोल जाए, जोरू से न बोले। खुदा और इंसान के बीच जमीन-आसमान का फासला रहता है, मगर मर्द-औरत में तो सिर्फ जिस्म की बनावट का रह गया हो फासला, तभी समझो कि हक के जोरू-मर्द हुए।' उन दिनों हमारे जी में एक बेवा से शादी करने की बात चढ़ी हुई थी।...खैर, छोड़ो, उस लंबे किस्से को। तुमसे अपनी हकीकत यह कहनी है मुझे कि लंबी मुफलिसी का मारा हुआ आदमी था मैं, लेकिन ये तय है कि बेईमानी और

हरमजदगी से वास्ता कभी न रखा हमने। लावारसी की मार को हमेशा पीठ पर डाले रखा और जो रोटी खाई, मेहनत की खाई—हक की समझ के, तब खाई। जब हम किसना के नजदीक आए हैं, खोट से नहीं। जहां तक है, यों समझो कि किसना ने खुद कहा है, तो कहीं ध्यान में आया है कि ये सयानी होती हुई बेटी का बाप हैं।' बाद में ये जरूर है कि ज्यों-ज्यों तुम उमिर में आती गई हो, कोठी का जर होती गई।'''और ये आज भी कहेंगे कि मेन के हम नहीं थे तेरे। ना यों हातिमताई का सा दिल था कि जैसे किसना ने तुम्हें हमारे हवाले किया था—हम तुम्हें किसी और के हवाले कर देने कि अमानत में खयानत ठीक नहीं। ' सो हमसे नहीं हुआ, लेकिन अपनी उम्र का और तुम्हारी बेरुखी का मलाल नहीं रहा, ऐसी बात नहीं। ''इसीलिए जब तुम अपनी जिद पर आ गई दिखाई दी, तो यों जो कर लिया कि 'जाने दे, बसंतलाल, पिंजरे की मैना को जोरू बनाकर किसने रखा?' बच्चे थे, मान लिया कि ये तेरी रजामंदी के नहीं थे, बेबसी के थे, तो अब महतारी भी खुद को ही बनना है।' और पूछ देखना इनमें भी, देखने-सुनने वालों से भी, कि तेरे जाने का सदमा बसंतलाल पर चाहे जितना गिरा हो, इन बच्चों पर नहीं ही गिरने दिया।"

बसंतलाल का स्वर क्रमशः ताप-भरा होता चला गया था। रामकली को खिन्नता की अनुभूति हुई तो सही, लेकिन इतना उसने अपने भीतर से मान लिया कि बसंतलाल को इससे कहीं ज्यादा कठोर बातें कह जाने का भी पूरा-पूरा अधिकार है।

बसंतलाल को जब तक मे यह ध्यान आए कि कहीं रामकली नाराज तो नहीं हो रही होगी—रामकली ने धीमे से अपना बायां हाथ अपने घुटने पर रखे बसंता के हाथ पर रख दिया और धीमे से बोली, "लो, इसे भी तुम ले लो।"

बसंतलाल ने रामकली के दायें हाथ में थमे गिलास को कुछ क्षणों तक तो अपनी अंगुलियों से दाबे रखा और फिर लेकर, एक सांस में गटक गया। गले में खराश-सी आ गई थी, लेकिन रामकली की ठोड़ी पर हाथ लगाकर, बसंतलाल इतना कह गया कि "रामकली, तू मेरी जोरू नहीं भगवती है।"

रामकली को जाने क्यों अचानक ही हरगुन पंडित को सुनाई सतोपी माता की कहानी याद आ गई। हरगुन पंडित के बारे में जानने की जिज्ञासा गहरी होती चली गई है, ऐसा उसने अनुभव किया, लेकिन बिना प्रसंग

निकाले अचानक पूछ बैठना उसे संगत नहीं लगा।

अचानक ही रामकली बोली, "चलो, अब बहुत हरगुन पंडित की तरह देवी मैया के भगत ना बनो। सुबह-सुबह पहुंची हूं, तो भुलाने भी न दिया। तुम्हारी इस वक्त की शक्ल देखके कौन कहेगा, तुम कितने जांगड़ हो।"

वसंतलाल बच्चों की तरह कंधे से आ लगा था। उसके चेहरे पर एक तरह की निरीहता उभर आई थी, जो उसकी उम्र और चेहरे के रंग तथा बनावट के अनुपात में असंगत लग रही थी—शराब की ऊष्मा में होने बावजूद। रामकली को स्मरण है, कल ऐसा नहीं था। कल वसंतलाल लगातार इस कोशिश में दिखता था, जैसे वह निरंतर रामकली को अपने भीतर जीवित रखे होने और छोटे-छोटे बच्चों को लगभग रामकली की ओर से सौंपी गई जिम्मेदारी की तरह निबाहता रहा हो और अपने इस तरह के पुरुषार्थ में कुछ ज्यादा ही बेहतर हो चुका हो। दाढ़ी बढ़ी हुई होने के बावजूद, वह ज्यादा जीवंत लगता था। जैसे अस्तित्व का संकट पड़ने पर कोई आदमी अपनी संपूर्ण जिजीविषा से जूझ पड़े—कल रामकली से मुलाकात और उसकी विदाई के बीच के सारे समय को वसंतलाल कुछ ऐसे ही व्यतीत कर रहा था, जैसे कोई दुर्लभ संयोग हो। जैसे लगातार सावधान रहना चाहता हो कि कहीं कोई चूक रह न जाए।

इस वक्त वसंतलाल एक तरह के गहरे इतमीनान और तृप्ति में था। दौड़-दौड़कर अपने शरण में लौट आने की सुरक्षा के अहसास से भरे हुए जानवर की तरह। उसने अपना सिर धीमे से खिसकाकर, ठीक छाती पर रख लिया, तो रामकली एक गहरी करुणा में डूबकर रह गई। अपने आपमें मूर्ति की तरह स्थित रहती हुई, किंचित उलाहने के से अंदाज में बोली, "आ गई हूं, तो ज्यादा मर्दानगी और खर्चनशीनी दिखाने के चक्कर में ही ना पड़े रहना। अब तो हर तरह से सिर्फ गिरस्ती को मजबूत करने की कोशिश तुम भी करो, वसंता, हम भी करें। बच्चों के मामले में भी इन्हीं दो पर बस तौबा रखनी चाहिए...समझे? हम तो सुबह भी लापरवाह ही रह गईं।"

अपना वाक्य पूरा करते-करते, रामकली ने वसंतलाल का सिर धीमे से अपनी छाती पर से हटा दिया और आत्मीयता से झिड़कती बोली, "चलो, अब रोटी खा लें।"

इतना आसानी से और सीधे ढंग से—इस प्रसंग को उठा ले जाएगी, खुद रामकली को विश्वास नहीं था। हलका-सा नशा उसे हो आया था और

ऐसे में अपने व्यवहार और बोलने की निष्णातता का अहसास उसे ज्यादा सुखद लगा। ...लेकिन इस सुखदता में वह ज्यादा रह नहीं पाई। उसके मांसल वक्ष पर से सिर हटा लेने में बसंतलाल ने क्यों नहीं जरा-सा भी प्रतिवाद किया, इसका अहसास रामकली को तब हुआ, जब उसने देखा कि बसंतलाल के चेहरे पर गहरे चौकन्नेपन और विस्मय की छाया है।

कुछ क्षण अपने चुप्पेपन में ही ठहरे रह जाने के बाद, बसंतलाल ने धीमे स्वर में कहा, "हम दो-चार महीना पहले ही नसबंदी करवा चुके, रामकली!"

अब कहीं जाकर रामकली को इस बात की प्रतीति हुई कि बसंतलाल की अक्सर फीकी-फीकी-सी दिखने वाली आंखों में इस वक्त सिर्फ दारू की ही ऊष्मा प्रतिबिंबित नहीं हो रही है—अनुभवों का पुख्तापन भी कौंध रहा है। उसने महसूस किया कि इस वक्त बसंतलाल की आंखों के आगे वह पारदर्शी हो आई है। एक क्षण में उसने अनुभव किया कि बसंतलाल की बात से अपने हतप्रभ और विचलित हो जाने की स्थिति को वह छिपा नहीं पाई है।

बसंतलाल ऐसे बोलने लगा, जैसे नशे की स्थिति में एकालाप कर रहा हो, "एक दिन फूलो ताई कह रही थी यों कि 'रामो बहू को अगर गैर मर्दों से बच्चे ना हो लिए, तो शायद है, वापस लौट भी आवे।' कहती थी कि पानी और औरत की बाढ़ को उतरते कोई बहुत ज्यादा लंबा वक्त लगता नहीं। ... अब मान लो कि तुझे कमला पहलवान या कि यों मान ले, अमोलकचंद ठेकेदार साले से ही कोई बच्चा हो गया होता, और बाद इसके तू वापस आई होती, रामकली—अरे भई, तो क्या बसंतलाल यों दरवाजे फेर के बैठ जाता कि जा तेरा-मेरा जोरू-खसम का नाता खत्म हो चुका। अब तू यों जान, रामकली, कि उम्र में ससुरे तुझसे बड़ा हूं तो जिंदगी भी बड़ी देखी है। जिंदगी जब सही तरीके से इंसान पर पड़ जाती है ना, तो सारी तुनकमिजाजी खींच लेती है। बच्चे कभी बीमार हुए हैं और रात-रात जागरण करता था, तो यों हूक उठती थी कि कहीं किसी दिन तू खुद ही लंबा पड़ गया, तो इन मासूमों को देखने वाला कौन है?...हां, भई, वह ऊपर वाला तो है और हर हालत में है, हर दुखियारे का है।...मगर इंसान के जी में और फकीरों के जी में बड़ा फर्क होता है।...तू यों ना सोच लेना कि हम देसी की रौ में बोल रहे हैं और बच्चे की तीमरदारी ठीक से ना की होगी... मगर बच्चों का गू-मूत, भैया, बाप ससुरा भी चाहे लाख पोंछ ले, यों कि महतारी की मुलायमियत से तो नहीं

पोंछ सकता ना ? अब तू ही बता कि क्यों मैं ये गलत कह रहा हूं कि भूरे की भौजाई से हम उम्मीद ही क्यों करते ? जो खून गिराती है, आंसू भी उसके उसीकी आंखों से गिरते हैं। अरे, भई, तुझे सपने में बीमार देखे का जितना दर्द हो जाएगा, भूरे की भौजाई को तो हम लोगों की सचमुच की बीमारी का नहीं हो सकता।...हां, तो मैं क्या कह रहा था ? यों कि इंसान की बर्दाश्त खतम हो चुकी हो, तो समझ लो कि इंसानियत भी न बची।...और इंसान की जिंदगी सिर्फ चमड़े की आंखों के देखने से ही नहीं ना कटती, भैया ? जरा अक्ल की आंखों से देखते चलना होता है—क्यों, क्या कुछ गलत कह जा रहा हूं मैं नशे में ?"

रामकली को लगा, सिर्फ बसंतलाल ही नहीं, आस-पास का सारा वातावरण भी प्रश्नचिन्ह बन गया है। अपने विषाद को संभाल और सह ले जाने के लिए वह अपने भीतर शक्ति जुटाने की कोशिश करती रही थी इस बीच, लेकिन अंततः सिर्फ यही अनुभव किया कि अब, इस वक्त, एक संपूर्ण पराजय स्तता में पड़े रह जाने के अलावा और कोई मुक्ति संभव है नहीं।

बसंतलाल कुछ क्षण तो अपने ही मौन में डूबा रहा। फिर उसका स्वर उपदेश अथवा बड़प्पन के बोझ की जगह, सिर्फ गहरी आत्मीयता से भर आया, "तुझसे लंबी जिंदगी हम देखे हैं, रामकली ! कहना सिर्फ यों है कि कदाचित् कोई फिक्र की बात है भी, तो गई ससुरी भाड़ में। एक चिंता तुम कभी न करना। जिसको हमने अपनी आत्मा में से ना त्यागा, उसे लोगों के कहने-सुनने से नहीं ना त्यागेंगे। यों भी अपनी अब तक की जिंदगी में से यही तजुर्बा हम हासिल किए हैं, कि क्या कहते हैं—कीड़े के डर से अनार फेंकना अक्लमंदी ना कहाती।"

रामकली को सिर्फ इतना अनुभव हुआ कि कुछ कहने की गुंजाइश नहीं है। बोतल में थोड़ी बची होती, तो शायद, वह थोड़ी और ले लेती।

रामकली थाली में रोटियां और सलाद लगाने को पलटी, तो बसंतलाल ने अनुभव किया कि अपने बड़प्पन का परिचय देने की कोशिशों में उसने वातावरण को काफी बोझिल बना दिया है। अपने अनुमान के सही निकल आने और उसे सह जाने के इतमीनान में, उसे लगा, वह रोशनी के आगे खड़े-खड़े आदमी के साए की तरह लंबा हो आया है।

"तू उस बोड़म बाम्हन को तो जानती थी ना ? क्या नाम था उसका—

हरगुन पंडित। जाने ससुर कब घर लौटता, कब शादी करता। यहां धपाय लिया एक दिन पुलिस वालों ने कि 'तू गाव का बाम्हन है, तेरे गाव में छै-सात बच्चे जरूर होंगे।' कहीं उधर राजापुर की तरफ हाथ पड़ गया था। भागता-भागता जो पैदल की बस्ती में लौटा है, तो मार कुत्ते की तरह हांफ चढ़ी थी, बोल नहीं पाता था। दूसरे दिन कब, किस वक्त चला गया, किसी-को खबर नहीं लगी। अभी पिछले हफ्ते एटा से चिट्ठी आई थी साहू के पास कि अपनी ताई जी के पास में रहने लगा है, गाव में और मजे में है। आते माघ महीने में शादी कर लेगा। बिना शादी के ही बधिया बन जाने के डर से भाग गया बाम्हन।"

इस बार बसतलाल ने ठहाका लगाना चाहा था, लेकिन सिर्फ हुमककर रह गया। लगा कि ठहाका लगाने जितना प्रसंग बना नहीं। जैसे कोई भूली-बिसरी चीज याद आ गई हो, बसतलाल ने बीड़ी निकालकर सुलगाई और धीरे-धीरे पीने लगा। धुआं उठा, और कमरे में फैला तो लगा, जैसे बसतलाल की विचलितता को ढाक रहा है।

रामकली को लगा, छिपकली पीठ पर गिरकर, नीचे फर्श पर दौड़ती गायब हो गई है। हरगुन पंडित को लेकर उसकी जिज्ञासा और स्मृतियों का इतना सामान्य अन्त होगा, इस बात का जैसे उसे विश्वास ही न हो पा रहा हो।

रामकली अब चुप थी, जैसे नहा चुकने पर किनारे खड़ी हो।

बसंतलाल सलाद खाते हुए कहता रहा, "अब तो हल्ला थम गया, उन दिनों तो जैसे शहर में बाढ़ का पानी भर गया हो। छोटे-छोटे बच्चों को देखो, तो 'बड़े बूढ़ों को देखो, तो जनानियों को देखो, तो गरीब-अमीर, जिसको देखो मार नसबंदी के अलावा जैसे कोई बात ही ना रह गई हो।' लोगों को तो बात का बतंगड़ बनाने में मजा आता है ना। सरकार भलाई की भी सोचेगी, तो पार्टियों वाले मार हो हल्ला मचा देते हैं। अब देखो, हो सकता है किसी सिपाही ने मजाक किया हो, बाज पुलिस वाले तो बड़े मजाकिए होते हैं—वो डरपोक बाम्हन मार भाग खड़ा हुआ और सारी बस्ती में ये झूठी अफवाह फैला दी कि रडुवा-कुंवारा कुछ नहीं देखा जा रहा। अब हम तो यो कहते हैं कि भैया रे, हाथी पागल हो गया हो, तो रास्ता छोड़ के बच जाओगे—सरकार पागल हो गई, तो भागने की जगह छोड़ के नहीं होगी। हम तो ये जानते हैं कि या तो सरकार जबरियाना बरतेगी नहीं और बरतेगी

यारो, तो फिर छोड़ेगी भी नहीं।"

रामकली बोली, "खाना शुरू करो।"

वसंतलाल समझ गया, हंसी-मजाक का प्रसंग निकालने की कोशिश में भटक गया है। रोटी का टुकड़ा तोड़ते हुए बोला, "बच्चे पैदा करने के लिए तो जमीन की जरूरत नहीं पड़ती—अन्न उगाने को तो पड़ती है ना ?"

ठहाका लगाया, तो लगा, अपने-आपको हवा में उछालने की कोशिश कर रहा है। जब तक रामकली न हंसे, तब तक बात बन जाने का इतमीनान अनुभव किया नहीं जा सकता।

रोटी खाते-खाते, वसंतलाल बताता रहा कि पिछले मार्च के महीने में रिक्शे का नया लाइसेंस बनवाना था, तो भूरे से भी 'सार्टीफिकेट' मांग रहे थे।

"अब तुम्हीं बताओ—भूरे की उम्र क्या होगी ? कोई साल-दो साल तुमसे बड़ा होगा। अभी हाल-हाल तक तो तुमसे दबते हुए कद का था, इधर तंदुरुस्ती अच्छी निकल आई है।...तू यों जान कि रिक्शा म्यूनिसपल्टी के दफ्तर में छोड़ के भाग खड़ा हुआ। हमसे राय साहब भी बहुत कह चुके थे कि 'वसंतलाल, दूसरी शादी तो तुम्हें करनी नहीं ना ? बच्चे भी पहले से ही मौजूद हैं और रिक्शा खींचने का काम भी तुम छोड़ने ही जा रहे हो। तुम तो प्रेस के काम से ही अच्छी रकम काट सकते हो। अगले साल बच्चे को भी तुम अच्छे स्कूल में भरती करा लेना चाहते हो। सरकार से अलग हम भी सौ-पचास दे देंगे।' अब जाने उन्हें कौन-सी गरज पड़ी थी, भैया ? रईस आदमी हैं, सोचते होंगे, देश की सेवा हमहूं थोड़ी-बहुत कर लें।...आखिर-आखिर तू यों जान कि हम सिविल हस्पताल खुद गए और भैया नसबंदी करवा लाए—जमाने-भर की तबाही खत्म हुई। बाम्हन तो यों भाग गड़ा हुआ, भूरे तो तब से रिक्शा चला रहा है, हालांकि लाइसेंस तो खुद हमें ही लाना पड़ा। कई बार पूछे हैं, तो यही बताता है कि किसीने टोक भी लिया, तो 'शादी सुदा नहीं है, इसी साल होने वाली है' पर छोड़ देते हैं। अलबत्ता, देहातों में सुनने में आया है कि खदेड़ा लगता है। लोग कहते हैं कि संजय गांधी के खुद औलाद की आस नहीं, इसीसे जबरिया नसबंदी पर उतरा है। हमारी मानो तो हो, हमारा कहना-सुनना इतना ही भैया कि जब मोतीलालजी के बहू की हया जाती रही—भूरे-भूरे की क्या पूछो हो।"

रामकली चुप ही रही, तो वसंतलाल बोला, "कहीं तेरे ध्यान में भी

वसंतलाल की आवाज़ भारी हो चली थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि उस पर शराब का नशा हावी हो रहा है, या अपनी सदाशयता का। उसने अपना घुटना आगे बढ़ाकर, रामकली के घुटने पर रख दिया और चुपचाप, पहले की अपेक्षा तेज़ गति से रोटी खाने में जुट गया।

रामकली ने अपने मुंह में का निवाला ठीक से निगला, पानी पिया और अब तक के अपने सारे अवसाद को पलट डालने की सी मुद्रा में बोली, "जहां तक है, हमारे में कोई ऐब अब पाओगे नहीं। पाओगे भी, तो जोरू की जगह पर ही रखके चलना, पहुबाइन के नहीं।...सवाल भीतर से मानने, न मानने का होता है, वसंता! अब हम इस हकीकत को समझ चुकी हैं कि इस घर में अगर हमें बच्चों की अम्मां की हैसियत से रहना है, तो तुम्हारी जोरू की हैसियत से पहले रहना होगा।"

बड़ी देर के बाद रामकली के चेहरे पर चमक दिखाई दी वसंतलाल को। अपनी स्थिति को पूरी तरह से स्वीकार लेने के बाद की ताज़गी में रामकली बहुत आत्मीय हो आई थी। वसंतलाल ने जूठे ही हाथ से सहला दिया, तो रामकली ने धीमे से झिड़क लिया, "तुम तो नशे में बच्चों से भी गए-बीते हो आते हो।"

रामकली कुल्ला करके, हाथ-मुंह धोकर लौट आई, तो वसंतलाल ने पायजामे के जेब में से पान निकाले, "तेरी पान खाने की आदत कम हो गई लगती है। कल से सादे लेता आऊंगा। पानमसाले का एक डिब्बा रख लेंगे, एक रत्ना की डिब्बी ले लेंगे। तुम तो जर्दा लेती नहीं होगी? गोश्त खाने के बाद तो खास करके पान की तलब लगती है।...हमको तो, रामकली, कुछ नींद-सी आने लगी। सिर भी कुछ भारी मालूम पड़ता है। आंखों में भी कुछ जलन-सी मालूम पड़ने लगी..."

अपने मुंह को जमुहाई लेने की सी मुद्रा में थपथपाते हुए, वसंतलाल ने रामकली को अपनी ओर खींच लिया।

"ओ हो, तुमको तो सभी चीजों का दौरा-सा पड़ता है।" कहते हुए, रामकली चारपाई पर थोड़ा-सा संभलकर बैठती हुई, बोली, "तुम आंखें ठंडे पानी से धो क्यों नहीं लेते, वसंता? जलन कम हो जाएगी। अब तो तुम चश्मा भी लगाने लगे।"

"कम्पोज़िंग के काम में दिक्कत होती है, रामकली! रिक्शा चलाने का जी ना रहा। प्रेस के काम में आंखों पर ज़ोर पड़ता है। शुक्ला मनीजर को

नजर भी दुखती है। लूकोला की अंग्रेजी शीशी साथ रखते हैं। कभी-कभार हम भी डाल लेते हैं। डालो, तो कुछ जलन-सी जरूर होती है, मगर बड़ा आराम मिलता है।"

"इतना-इतना फालतू खर्च करते हो, एक शीशी तुम भी ले आए होते!" रामकली बोली, "अच्छा, ठहरो, ठंडे पानी से भिगोके तौलिया ले आती हूं। आखें लाल-सी तो हो आई है तुम्हारी।"

बसंतलाल ने रोक लिया। शरारती बच्चों की तरह बोला, "दूध आना बंद ना हो गया हो, तो दो-चार बूंदें डाल दे, रामकली! जो ठंडक छाती के दूध से पड़ती है, ससुरी उस अंग्रेजी दवा से भी ना पड़ती।"

रामकली को बिजली की सी चमक के साथ याद आया कि एक बार बसंतलाल को तेज बुखार था, तब शायद, सिर्फ इतना ही हुआ था। फूलो ताई के कहने पर, उसने बसंतलाल के तलुवे पर दूध चुवाया और आंखों में। इसके अलावा, बच्चों की आख आ जाती थी, तो।

"हाय, शरम नाम की चीज को तुम शायद, दारू के साथ ही चढ़ा गए, बसंता!" एक बारगी ही रामकली आत्मीयता और औरतपन में डूब गई। जैसे बसंतलाल के कानों में कह रही हो—धीमे से, लेकिन अपनी सम्पूर्ण शरारत के साथ बोल उठी रामकली, "तुम क्या सोचते हो, लगातार बरसों तक दूध ही देती रहूंगी?"

रामकली की उन्मुक्त खिलखिलाहट को बसंतलाल सिर्फ सुनता ही रह गया।

बड़ी देर तक रामकली की हंसी कमरे में भूल से आ बैठे पक्षी की सी उड़ानें भरती रही और वह छोटा-सा कमरा ऐसा लगता रहा, जैसे आकाश हो गया हो।